साधनमाला—षष्ठ वर्ष—मणि २

हिन्दी कुलार्णव

सम्पादक

श्री भद्रशील शर्मा

कल्याण मन्दिर, कटरा, प्रयाग

साधनमाला—षष्ठ वर्ष—मणि २

हिन्दी कुलार्णव

सम्पादक
श्री भद्रशील शर्मा

प्रकाशक
कल्याण मन्दिर, कटरा, प्रयाग

प्रथम संस्करण] चैत्र पूर्णिमा [मूल्य २-५०
५०० संवत २०२१ विक्रमी सजिल्द ३-००

विषय-प्रवेश



भूमिका

'कुलार्णव तन्त्र' की गणना आगम ग्रन्थों में हुई है। अतः इसका महत्व यहाँ स्पष्ट करने का आवश्यकता नहीं है। किन्तु यह अवश्य उल्लेखनीय है कि यह तन्त्र कौलधर्म के सिद्धान्तों की स्पष्ट अभिव्यक्ति करने में अग्रगण्य है। इससे इसकी उपयोगिता बहुत अधिक मानी गई है और सभी साधक बड़े आदर के साथ इसका मनन किया करते हैं।

इसके सत्रह उल्लासों में विविध विषयों का जो विवेचन किया गया है, वह बहुत कुछ सूत्रात्मक है। उसका स्पष्टीकरण सुचारु रूप से करना अधिकारी विद्वानों का काम है। इन पंक्तियों का लेखक न तो विद्वान् है और न ही ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रहस्यपूर्ण उक्तियों की व्याख्या करने का अधिकारी है। उसने किसी प्रकार इस ग्रन्थ का सारांश हिन्दी भाषा में लिखकर अध्यात्म प्रमियों के समक्ष इस उद्देश्य से प्रस्तुत किया है कि वे इस अनूठे आगम साहित्य की विशेषता को अनुभव करें और अधिकारी विद्वानों से इसकी बातों को विस्तार के साथ समझने को सचेष्ट हों। बहुत संभव है कि एक ओर अपनी अल्पज्ञता और दूसरी ओर विषय की रहस्यात्मकता के कारण लेखक ने सारांश प्रस्तुत करने में कहीं कुछ त्रुटियाँ भी की हों। इसके लिये वह क्षमाप्रार्थी है और आशा करता है कि जो पाठक बन्धु

अधिकारी विद्वानों की सहायता से इस ग्रन्थ का मनन करने को सक्रिय होंगे, वे सहज ही उन त्रुटियों का संशोधन कर लेने की कृपा करेंगे। वैसे यथाशक्ति यह प्रयत्न किया गया है कि मूल ग्रन्थ की कोई भी महत्त्वपूर्ण बात छूटने न पावे और सारांश करने में कहीं कोई त्रुटि न रह जाय। तथापि वास्तविक जिज्ञासु बन्धुओं से हमारा यही अनुरोध है कि वे इस ग्रन्थ के मूल संस्करण का अध्ययन किसी योग्य अधिकारी की सहायता से करें। तभी वे इसके महत्व को भले प्रकार समझ सकेंगे और इसमें निहित ज्ञान से लाभान्वित हो सकेंगे। मूल 'कुलार्णव तन्त्र' भी कल्याण मन्दिर द्वारा 'गुप्तावतार दुर्लभ तन्त्रमाला' के अन्तर्गत प्रकाशित किया जा चुका है।

आशा है कि इस संक्षिप्त 'हिन्दी कुलार्णव' से उक्त प्रसिद्ध आगम ग्रन्थ के महत्त्व की कुछ झाँकी अध्यात्म-प्रेमियों को मिल सकेगी। यही लेखक को अभीष्ट है।

—लेखक

हिन्दी कुलार्णव

पहला उल्लास

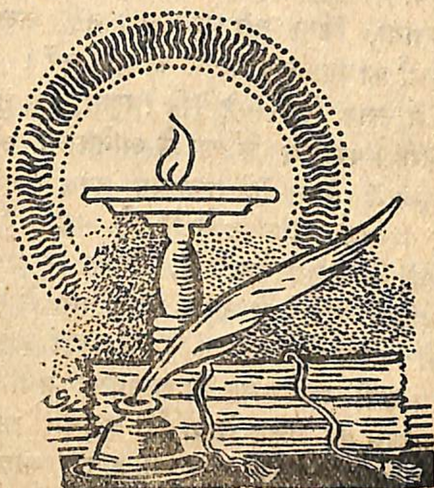
जीव की स्थिति

श्री देवी ने ईश्वर से कहा—हे भगवन्! इस सारहीन कठिन संसार में नाना प्रकार के शरीरों से अनन्त जीवराशियाँ स्थित होकर उत्पन्न होती हैं और मरती हैं और उनका कोई अन्त नहीं है। घोर दुःख से व्याकुल होकर वे कभी सुखी नहीं होतीं। हे प्रभो! किस उपाय से वे मुक्त हो सकती हैं, यह आप मुझे बतलाइये।

ईश्वर ने उत्तर दिया—हे देवि! सुनो। तुमने मुझसे जो पूछा है, उसे बताता हूँ। इसके सुनने मात्र से मनुष्य संशय से मुक्त हो जायगा। हे देवि! परब्रह्मस्वरूपी शिव निष्कल है। वह सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश और निर्मलहृदय है। वह आदि-अन्त से रहित एक ज्योति है तथा निर्विकार, पर से भी परे, निर्गुण और सच्चिदानन्द है। जीव-संज्ञावाले उसी के अंश हैं, जो असत्य विद्या के द्वारा भिन्न हुए हैं जैसे कि अग्नि में से चिनगारियाँ फूटती हैं। वे विभिन्न उपाधियों और अनादि कर्मों आदि के कारण उससे पृथक् रहते हैं तथा अपने सुख एवं दुखदायक पुण्य-पापों से नियन्त्रित रहते हैं। अपने कर्मा-

नुसार प्राप्त अमुक-अमुक जाति से युक्त देह, आयु और प्रारब्ध का वे जन्म-जन्मान्तरों में भोग करते रहते हैं, जिसका कोई अन्त नहीं है। अच्छे कर्मों के फलस्वरूप वे मानव होकर जब ज्ञानी होते हैं, तब मोक्ष को प्राप्त करते हैं और मोक्ष का कारण हे महेश्वरि! साक्षात् तत्त्वज्ञान है। न तो वेदों के अध्ययन से मुक्ति मिलती है, न दर्शनों के मनन से। यही बात सभी शास्त्रों पर लागू होती है। ज्ञान ही से मुक्ति मिलती है। मुक्तिदायिनी एकमात्र गुरुवाणी है, शेष सभी विद्याएँ विडम्बना मात्र हैं। शिव के द्वारा कथित अद्वैत तत्त्व तो क्रियारूपी परिश्रम से रहित है। उसे गुरुमुख से प्राप्त करना चाहिये। ज्ञान दो प्रकार का बताया गया है—एक तो आगम से प्राप्त होता है और दूसरा विवेक से। आगम से प्राप्त ज्ञान शब्दब्रह्म-परक होता है और विवेक से प्राप्त ज्ञान परमब्रह्म का निदर्शक होता है। कुछ लोग द्वैत को चाहते हैं तो कुछ अद्वैत को, किन्तु मेरे तत्त्व को जाननेवाले द्वैत-अद्वैत से रहित होते हैं। 'मेरा है' और 'मेरा नहीं है'—ये दो पद क्रमशः बन्धन और मोक्षकारक हैं। वही वास्तव में कर्म है, जो बन्धनकारक न हो और वही विद्या है, जो मुक्तिकारिणी हो। जब तक कामना उत्तेजित रहती है, सांसारिक इच्छाएँ बनी रहती हैं, इन्द्रियाँ चञ्चल रहती हैं, तब तक तत्त्व की बात कहाँ? जब तक प्रयत्नरूपी रोग है, संकल्प की कल्पना बनी है, मन में स्थिरता नहीं है, तब तक तत्त्व की बात कहाँ? जब तक देहाभिमान है, ममता बनी है, गुरु की दया प्राप्त नहीं है, तब तक तत्त्व की कथा कहाँ? जब तक तप, व्रत, तीर्थ, जप, होम, अर्चन आदि हैं और वेद- शास्त्र-आगम की चर्चा है, तब तक तत्त्व की कथा कहाँ? अतएव हे देवि! यदि आत्मसिद्धि की इच्छा है तो सभी प्रयत्नों से सभी अवस्थाओं में सदैव तत्त्वनिष्ठ रहे। तापत्रय के कष्ट से

पीड़ित स्वधर्मज्ञान रूपी पुष्प और स्वकुलोक्त (अर्थात् अपने कुल में जो बातें प्रचलित हैं, ऐसे) फलवाले कल्पवृक्ष की छाया का आश्रय ग्रहण करे। हे पार्वति ! अधिक कहने से क्या लाभ। रहस्य की बात सुनो। कुलधर्म के सिवा मुक्ति नहीं है, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है। गुरुमुख से उस तत्त्व को जानकर हे देवि ! इस घोर संसार के बन्धन से जीव सहज ही मुक्त हो जाता है।



दूसरा उल्लास

कुलधर्म का माहात्म्य

श्री देवी ने पूछा—हे कुलेश ! आपने कुलधर्म के सम्बन्ध में तो बताया, किन्तु उस पर प्रकाश नहीं डाला। उस सर्व-धर्मोत्तम धर्म का माहात्म्य बताने की कृपा करें।

ईश्वर ने उत्तर दिया—हे देवि ! सुनो, जो तुम पूछती हो, उसे मैं कहूँगा। परम्परा के क्रम से आनेवाला और एक मुख से दूसरे मुख में स्थित होनेवाला वह तत्त्व यद्यपि अकथनीय है, तथापि परमार्थ की दृष्टि से मैं उसे कहता हूँ। सबसे उत्तम वेद हैं, वेदों से उत्तम वैष्णव हैं, वैष्णव से उत्तम शैव, शैव से उत्तम दक्षिण, दक्षिण से उत्तम वाम, वाम से उत्तम सिद्धान्त, सिद्धान्त से उत्तम कौल और कौल से उत्तम कोई नहीं है। वेद और आगम रूपी महा समुद्र को ज्ञानरूपी मथानी से मथकर मैंने इस कुलधर्म को प्रकट किया है। कुलधर्म का आश्रय लेकर श्रेष्ठ मनुष्य स्वर्ग से दूसरे लोक को जाकर मोक्षरूपी रत्न को प्राप्त करता है। जो योगी होता है, वह भोगी नहीं होता और जो भोगी होता है, वह योग को नहीं जानता किन्तु कौल भोग और योग दोनों से युक्त है। अतः हे प्रिये ! वह सबसे श्रेष्ठ है। भोग साक्षात् योग का रूप ले लेता है, पातक सुकृत बन जाता है और संसार मोक्ष का साधन हो जाता है; हे कुलेश्वरि ! यही कुलधर्म है। कुलधर्म के महामार्ग से जाकर अविलम्ब ही मुक्तिपुरी में पहुँचा जाता है, इसमें संदेह नहीं। अतएव कौल मार्ग का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। लोग चाहे प्रशंसा

करें, चाहे निन्दा करें; लक्ष्मी चाहे जाए, चाहे रहे; मृत्यु चाहे आज हो, चाहे युग के अन्त में; कौल मार्ग को कभी न छोड़े। न तो धन के लोभ से, न क्रोधवश, न द्वेष के कारण, न ईर्ष्या से, न कामवश और न भय से ही प्राप्त कुलधर्म का त्याग करे। गुरु की दया से युक्त, दीक्षा-द्वारा पाप-मुक्त, कुलपूजा में तल्लीन—यह हे देवि! कौल ही है, कोई अन्य नहीं। वे पुण्य-कर्मवाले धन्य हैं, वे ही सन्त और योगी हैं, जिन्हें भाग्यवश कुल का ज्ञान प्राप्त होता है। हे महादेवि! जीवन्मुक्ति का सरल उपाय कुलशास्त्रों में छिपा हुआ है। कुल के ज्ञाताओं में भी जो ऊर्ध्वाम्नाय से प्रसिद्ध हैं, उनका ज्ञान श्रेष्ठ है। हे पार्वति! सभी कुलशास्त्रों को मैंने ही कहा है। अतः वे स्वतः प्रमाण हैं, इसमें संदेह नहीं। देवताओं और पितरों के लिए समर्पित किया जानेवाला मद्य अमृतस्वरूप हो जाता है और पुरुष पशु की बलि देकर उसके मांस को विधिवत् स्वर्णपात्र में रखकर प्रसाद रूप में ग्रहण करने से अविलम्ब ही सर्व पापों का नाश होकर तत्त्वज्ञान की उपलब्धि होती है। हे अम्बिके! कुल का यह कुछ माहात्म्य मैंने संक्षेप में यहाँ कहा है। अब क्या सुनना चाहती हो?



तीसरा उल्लास

ऊर्ध्वाम्नाय और प्रासादपरा मन्त्र की महिमा

श्री देवी ने कहा—हे प्रभो ! मैं सर्वोत्तम ऊर्ध्वाम्नाय की महिमा सुनना चाहती हूँ। आप उसके मन्त्र को बताइये।

ईश्वर बोले—हे देवि ! सुनो। मैंने अपने पाँच मुखों से—पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, उत्तराम्नाय और ऊर्ध्वाम्नाय—ये पाँच आम्नाय कहे हैं। ये पाँचों मोक्ष-मार्ग के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनमें से प्रत्येक आम्नाय के मन्त्र भुक्ति और मुक्ति के देनेवाले हैं तथा उसके उपमन्त्र भी तत्त्वदायक होने से प्रसिद्ध हैं। संसार के कल्याण की इच्छा से मैंने ही उन सबको कहा है। उन सब मन्त्रों के देवता उन उन फलों को देते हैं। केवल एक आम्नाय को जो जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है,इसमें संदेह नहीं। फिर चार आम्नायों के ज्ञाता की क्या बात; साक्षात् शिव हो जाता है। चार आम्नायों के विशेष ज्ञान से भी श्रेष्ठ ऊर्ध्वाम्नाय है। अतएव यदि आत्मसिद्धि की इच्छा है, तो उसी को जानना चाहिये। सब धर्मों से ऊर्ध्व होने के कारण ऊर्ध्वाम्नाय श्रेष्ठ है। निम्न स्थित व्यक्ति को ऊर्ध्वगामी करने से यह ऊर्ध्वाम्नाय कहलाता है। इसका तत्त्व उच्चस्तर का है, यह संसार-सागर को नष्ट करता है और ऊर्ध्वलोक इसकी सेवा करते हैं—अतएव यह ऊर्ध्वाम्नाय कहलाता है। इसलिये हे देवेशि ! मोक्ष के एकमात्र साक्षात् साधन-स्वरूप ऊर्ध्वाम्नाय का ज्ञान प्राप्त करे, जो सब आम्नायों से अधिक फल देनेवाला और पर से भी परे है। पूर्वाम्नाय सृष्टिरूप है

और दक्षिणाम्नाय स्थितिरूप; पश्चिमाम्नाय संहाररूप है और उत्तराम्नाय अनुग्रहरूप है। दूसरे प्रकार से पूर्वाम्नाय मन्त्रयोग है और दक्षिणाम्नाय भक्तियोग; पश्चिमाम्नाय कर्मयोग है और उत्तराम्नाय ज्ञानयोग है। हे कुलनायिके! ये सब तत्व ऊर्ध्वाम्नाय में विद्यमान हैं। साक्षात् ज्ञान-स्वरूप होने से इस आम्नाय में कुछ भी कर्म शेष नहीं रहता। ऊर्ध्वाम्नाय की यह कुछ महिमा मैंने संक्षेप में यहाँ कही है। अब इसके उत्तम मन्त्र का माहात्म्य कहता हूँ—

ऊर्ध्वाम्नाय में 'पराप्रासाद मन्त्र' अधिष्ठित है, जो हम दोनों का परमस्वरूप है। उसे जो जानता है, वह स्वयं शिव हो जाता है। पराप्रासाद मन्त्र का ज्ञाता सर्वकर्मविहीन होते हुए भी सहज ही जिस गति को प्राप्त करता है, उसे कोई भी धार्मिक व्यक्ति प्राप्त नहीं कर पाता। उसके घर में चिन्तामणि, कामधेनु और कल्पतरु सदैव विद्यमान रहते हैं। पराप्रासाद का जप करनेवालों की साक्षात् कुबेर सेवा करते हैं। पराप्रासाद मन्त्र का ज्ञाता जो करता है, जो चाहता है और जो बोलता है, वह सब हे महेशानि! तप, ध्यान, जप स्वरूप ही होता है। दीक्षापूर्वक क्रमयुक्त जो पराप्रासाद मन्त्र को जानता है, वह 'मैं' ही हूँ, इसमें संदेह नहीं। चाहे ब्राह्मण हो या अन्त्यज, चाहे पवित्र हो या अपवित्र—जो पराप्रासाद का जप करनेवाला है, वह निस्संदेह मुक्त है। चाहे चलते हुए जपे या बैठे हुए, चाहे जगते हुए जपे या सोते हुए, यह पराप्रासाद मन्त्र हे देवेशि! कभी निष्फल नहीं होता। प्रचलित सहस्रों मन्त्रों में से प्रत्येक पर्याप्त विलम्ब से केवल एक फल प्रदान करता है। किन्तु हे कुलेशि! यह मन्त्रराज शीघ्र ही सर्व फलों को प्रदान करता है। यह पराप्रासाद मन्त्र सब मन्त्रों में श्रेष्ठ है। चाहे ज्ञानपूर्वक भजन करे या अज्ञानपूर्वक, यह मन्त्र सदैव

अभीष्ट प्रदान करता है। इन्द्र और शची, चन्द्र और रोहिणी, स्वाहा और अग्नि, प्रभा और सूर्य, लक्ष्मी और नारायण, वाणी और ब्रह्मा, रात्रि और दिन, विन्दु और नाद, प्रकृति और पुरुष, आधार और आधेय, भोग और मोक्ष, प्राण और अपान, शब्द और अर्थ, विधि और निषेध, सुख और दुःख इत्यादि जितने द्वन्द्व समस्त लोकों में दिखाई या सुनाई देते हैं, वे सब हे कुलेश्वरि ! हम दोनों के ही स्वरूप हैं। पुरुष और स्त्री के समस्त रूप हम दोनों के ही अंशों से उत्पन्न हुए हैं। अतएव यह पराप्रासाद मन्त्र सर्वात्मक है।

हे देवि ! यह अरूप, भावना-गम्य, परंब्रह्म, निष्कल, निर्मल, नित्य, निर्गुण, आकाशवत् अनन्त और मनवाणी से परे है। इस पराप्रासाद मन्त्र का अर्थ केवल ध्यान से ही प्रकाशित होता है। इसी से हे देवि ! इस मन्त्र का नाम 'पराप्रासाद' है। यह परतत्त्व का स्वरूप है, सत्-चित् आनन्द इसके लक्षण हैं, शिव-शक्ति से यह ओत-प्रोत है, भुक्ति और मुक्ति का यह देनेवाला है, सकर्मा होते हुए भी यह निष्कर्म है, सगुण होते हुए भी निर्गुण है—अतएव यह श्री प्रासादपरा मन्त्र सब मन्त्रों का शिरोमणि है। ऐसा मानकर जो इस श्रेष्ठ मन्त्र में निष्ठा रखकर आगमोक्त विधि से क्रमपूजा-सहित इसका (श्री प्रासाद परा मन्त्र का) एक सौ आठ बार जप करता है, वह ब्रह्महत्यादि महापापों से मुक्त हो जाता है। दो सौ बार जो जप करता है, वह सब प्रकार की दशाओं में पूर्व जन्मार्जित समस्त पापराशि से छुटकारा पा जाता है। जो तीन सौ बार जपता है, वह समस्त प्रकार के यज्ञों, दानों, व्रतों और तीर्थों का फल प्राप्त करता है। चार सौ बार जो जप करता है, उसके द्वार पर अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ सदैव प्रस्तुत रहती हैं, धर्मार्थकाममोक्ष उसके हाथ में साक्षात्

स्थित रहते हैं और चारों प्रकार की मुक्ति वह प्राप्त करता है। जो पाँच सौ बार जप करता है, उसके फल का वर्णन करने में मैं समर्थ नहीं हूं। अतएव हे कुलनायिके! सब प्रयत्न करके, सब अवस्थाओं में, सदैव श्रीप्रासादपरा मन्त्र का भुक्ति एवं मुक्ति के लिए जप करना चाहिये।

इस प्रकार हे देवि! ऊर्ध्वाम्नाय और श्रीप्रासादपरा मन्त्र की कुछ महिमा मैंने तुमसे कही। अब तुम क्या सुनना चाहती हो?



चौथा उल्लास

श्री प्रासादपरा मन्त्र एवं महाषोढा

श्री देवी ने कहा--हे ईशान ! मैं श्रीप्रासादपरा मन्त्र को सुनना चाहती हूँ। आप न्यास, ध्यान आदि के सहित उसे बताइये।

ईश्वर बोले—हे देवि ! सुनो ! 'अनन्तचन्द्रभुवनमिन्दुविन्दुयुगान्वित' अर्थात् अनन्तचन्द्र है नादविन्दु (ँ), भुवन है औकार, विन्दु है हकार और विन्दुयुग है सकार। इस प्रकार 'ह्सौं' सिद्ध हुआ। यही सादि होने पर 'स्हौं' सिद्ध होता है। श्री प्रासादपरा मन्त्र भुक्ति और मुक्ति का देनेवाला है। पराप्रासाद मन्त्र हे कुलेश्वरि ! 'सादि' कहा गया है। शीघ्र प्रसन्न होकर फल देता है, इसलिए 'प्रासाद' मन्त्र कहलाता है और सब मन्त्रों से परे होने तथा परतत्त्व का निदर्शक होने के कारण इसे 'परा' मन्त्र कहा जाता है। हे देवि ! यह कुलमन्त्र है। अब इसका न्यास सुनो।

प्रातःकाल उठकर गुरुदेव का ध्यान करने के बाद एक बार मूलमन्त्र का स्मरण कर शौचादि से निवृत्त हो। फिर स्नान, संध्या, तर्पण आदि करे। एकान्त में द्वारपूजा, तीनों विघ्नों का उत्सारण (विनाश) कर पूजास्थान में प्रवेश कर आसन पर बैठे। फिर देवीपूजा के पूर्व ध्यान, शिवादि गुरु की वन्दना, आसन शोधन और गणपति-क्षेत्रपाल की वन्दना करे। तदनन्तर गुरुपादुका के मन्त्र का स्मरण कर दीपनाथ

का अर्चन करे। फिर कर और षडङ्गों का शोधन, प्राणायाम, दिग्बन्धन कर दोनों अङ्गन्यास और दस प्रकार के मातृकान्यास (अन्तर्मातृका, सृष्टि-स्थिति संहार ये तीन बहिर्मातृका, कला मातृका, श्रीकण्ठमातृका, केशवमातृका, लज्जाबीजमातृका, रमाबीजमातृका, कामबीजमातृका) आदि करे। तब—

अस्य श्रीपराप्रासादमन्त्रस्य परशम्भुः ऋषिः, अव्यक्ता गायत्री छन्दः, मन्त्रेश्वरी परा देवता, ह्सां स्हां बीजं, ह्सीं स्हीं शक्तिः, ह्सूं स्हूं कीलकं श्रीपरादेवताप्रसादसिध्यर्थे विनियोगः।

करन्यास—

हसांस्हां अंगुष्ठाभ्यां नमः। हसींस्हीं तर्जनीभ्यां नमः।
हसूंस्हूं मध्यमाभ्यां नमः। हसैं स्हैं अनामिकाभ्यां नमः।
हसौं स्हौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। हसः स्हः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

षडङ्गन्यास—

हसांस्हां हृदयाय नमः। हसीं स्हीं शिरसे स्वाहा।
ह्सूं स्हूं शिखायै वषट्। हसैं स्हैं कवचाय हुं।
हसौंस्हौं नेत्रत्रयाय वौषट्। हसः स्हः अस्त्राय फट्।

मूर्तिन्यास—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौं स्हौं हों ईशानाय नमः—अंगुष्ठयोः।
" " हें तत्पुरुषाय नमः—तर्जन्योः।
" " हुं अघोराय नमः—मध्यमयोः।
" " हिं वामदेवाय नमः—अनामिकयोः
" " हं सद्योजाताय नमः—कनिष्ठिकयोः

इसी प्रकार क्रमशः मूर्धा, मुख, हृदय, गुह्य और पाद देश में क्रमशः अंगुष्ठ, तर्जनी आदि अँगुलियों से न्यास करे।

तब उक्त क्रम से क्रमशः ऊर्ध्व, प्राक्, दक्षिण, उदीच्य और पश्चिम मुखों में क्रमशः अंगुष्ठ, तर्जनी आदि अँगुलियों से न्यास करे।

तदनन्तर 'हसां हसीं' इत्यादि से षडङ्गन्यास कर 'स्हां स्हीं' इत्यादि से भी षडङ्गन्यास करे।

इसके बाद निम्न प्रकार षडङ्ग न्यास करे—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्ौं स्हौं सर्वज्ञाय नमः—अंगुष्ठयोः।

" " अमृते तेजोमालिनि नित्यतृप्ताय नमः तर्जन्योः।

" " ब्रह्मशिरसे स्वाहा ज्वलितशिखिशिखायानादिबोधाय नमः मध्यमयोः।

" " वज्रिणे वज्रहस्ताय स्वतन्त्राय नमः अनामिकयोः।

" " सौं वौं हौं नित्यमलुप्तशक्तये नमः कनिष्ठकयोः।

" " श्रीं श्लीं पशु हुं फट् नित्यमनन्तशक्तये नमः करतलयोः।

इसी क्रम से हृदयादि षडङ्गों में भी न्यास करे।

अब अड़तीस कलाओं का न्यास करे। सब मन्त्रों के पूर्व 'ॐ' लगा ले। यथा—

पहले समुष्टि अंगुष्ठ से न्यास करे—

ॐ ईशानः सर्वविद्यानां शशिन्यै नमः ऊर्ध्ववक्त्रे।

ईश्वरः सर्वभूतानां अङ्गदायै नमः पूर्ववक्त्रे।

ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मेष्टदायै नमः दक्षवक्त्रे।

ब्रह्मा शिवो मे अस्तु मरीच्यै नमः उत्तरवक्त्रे।
सदाशिवोम् अंशुमालिन्यै नमः पश्चिमवक्त्रे।
अंगुष्ठतर्जनी को मिला उनसे न्यास करे—
तत्पुरुषाय विद्महे शान्त्यै नमः पूर्ववक्त्राधः।
महादेवाय धीमहि विद्यायै नमः दक्षिणवक्त्राधः।
तन्नो रुद्रः प्रतिष्ठायै नमः उत्तरवक्त्राधः।
प्रचोदयात् निवृत्यै नमः पश्चिमवक्त्राधः।
अंगुष्ठमध्यमा को मिला उनसे न्यास करे—
अघोरेभ्यः तमायै नमः हृदि।
अथ घोरेभ्यो मोहायै नमः ग्रीवायां।
घोर क्षमायै नमः दक्षांसे।
घोरतरेभ्यो निद्रायै नमः वामांसे।
सर्वतः शर्व व्याध्यै नमः नाभौ।
सर्वेभ्यो मृत्यवे नमः कुक्षौ।
नमस्ते अस्तु क्षुधायै नमः पृष्ठे।
रुद्ररूपेभ्यः तृष्णायै नमः वक्षसि।
अंगुष्ठअनामिका को मिलाकर उनसे न्यास करे—
वामदेवाय नमो रजायै नमः गुह्ये।
ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रक्षायै नमः लिंगे।
रुद्राय नमो रत्यै नमः दक्षोरौ।
कालाय नमो मालिन्यै नमः वामोरौ।
कल विकरणाय नमः काम्यायै नमः दक्षजानुनि।
विकरणाय नमः शशिन्यै नमः वामजानुनि।
बल विकरणाय नमः क्रियायै नमः दक्षजंघायां।
विकरणाय नमः वृद्ध्यै नमः वामजंघायां।
बलाय नमः स्थिरायै नमः दक्षस्फिचि।
बलप्रमथनाय नमः रात्र्यै नमः वामस्फिचि।

सर्वभूतदमनाय नमो भ्रामिण्यै नमः कट्यां ।
मनोन्मनाय नमः मोहिन्यै नमः दक्षपार्श्वे ।
उन्मनाय नमो जरायै नमः वामपार्श्वे ।

अंगुष्ठ-कनिष्ठा को मिलाकर उनसे न्यास करे—

सद्योजातं प्रपद्यामि सिद्ध्यै नमः दक्षपादतले ।
सद्योजाताय वै नमः ऋद्ध्यै नमः वामपादतले ।

भवे लक्ष्म्यै नमः दक्षहस्ततले ।
भवे धृत्यै नमः वामहस्ततले ।
नातिभवे मेधायै नमः नासिकायां ।
भवस्व माम् प्रज्ञायै नमः शिरसि ।
ॐ भव प्रभायै नमः दक्षबाहौ ।
उद्भवाय नमः सुधायै नमः वामबाहौ ।

अब महाषोढान्यास करे, जिसके अन्तर्गत प्रपञ्च, भुवन, मूर्ति, मन्त्र, दैवत और मातृका—ये छः न्यास हैं। यह महाषोढान्यास सब न्यासों में उत्तम है। इसका क्रम इस प्रकार है—

प्रपञ्चन्यास

निम्नलिखित प्रत्येक मन्त्र के आदि में 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः' और अन्त में 'ह्सौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ' लगाकर न्यास करे—

अं प्रपञ्चरूपायै श्रियै नमः शिरसि ।
आं द्वीपरूपायै मायायै नमः मुखवृत्ते ॥
इं जलधिरूपायै कमलायै नमः दक्षनेत्रे ।
ईं गिरिरूपायै विष्णुवल्लभायै नमः वामनेत्रे ॥
उं पत्तनरूपायै पद्मधारिण्यै नमः दक्षकर्णे ।
ऊं पीठरूपायै समुद्रतनयायै नमः वामकर्णे ॥

ॠं क्षेत्ररूपायै लोकमात्रे नमः दक्षनासापुटे।
ऌं वनरूपायै कमलवासिन्यै नमः वामनासापुटे॥
ऌं आश्रमरूपायै इन्दिरायै नमः दक्षगण्डे।
ॡं गुहारूपायै मायायै नमः वामगण्डे।
एं नदीरूपायै रमायै नमः ऊर्ध्वोष्ठे॥
ऐं चत्वररूपायै लक्ष्म्यै नमः अधरोष्ठे।
ओं उद्भिजरूपायै नारायणप्रियायै नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ ॥
स्वेदजरूपायै सिद्धिलक्ष्म्यै नमः अधोदन्तपंक्तौ।
अं अंडजरूपायै राजलक्ष्म्यै नमः जिह्वामूले॥
अः जरायुजरूपायै महालक्ष्म्यै नमः जिह्वाधः।
कं लवरूपायै आर्यायै नमः दक्षबाहुमूले॥
खं त्रुटिरूपायै उमायै नमः दक्षकूर्परे।
गं कलारूपायै चण्डिकायै नमः दक्षमणिबन्धे॥
घं काष्ठारूपायै दुर्गायै नमः दक्षांगुलिमूले।
ङं निमेषरूपायै शिवायै नमः दक्षांगुल्यग्रे॥
चं श्वासरूपायै अपर्णायै नमः वामबाहुमूले।
छं घटिकरूपायै अम्बिकायै नमः वामकूर्परे॥
जं मुहूर्तरूपायै सत्यै नमः वाममणिबन्धे।
झं प्रहररूपायै ईश्वर्यै नमः वामांगुलिमूले॥
ञं दिवसरूपायै शाम्भव्यै नमः वामांगुल्यग्रे।
टं सन्ध्यारूपायै ईशान्यै नमः दक्षपादमूले॥
ठं रात्रिरूपायै पार्वत्यै नमः दक्षजंघायाम्।
डं तिथिरूपायै सर्वमङ्गलायै नमः दक्षगुल्फे॥
ढं वाररूपायै दाक्षायण्यै नमः दक्षपादांगुलिमूले।
णं नक्षत्ररूपायै हैमवत्यै नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे।
तं योगरूपायै महामायायै नमः वामपादमूले॥

थं करणरूपायै माहेश्वर्यै नमः वामजंघायाम् ।
दं पक्षरूपायै मृडान्यै नमः वामगुल्फे ॥
धं मासरूपायै रुद्राण्यै नमः वामपादांगुलिमूले ।
नं राशिरूपायै शर्वाण्यै नमः वामपादांगुल्यग्रे ॥
पं ऋतुरूपायै परमेश्वर्यै नमः दक्षकुक्षौ ।
फं अयनरूपायै काल्यै नमः वामकुक्षौ ॥
बं वत्सररूपायै कात्यायन्यै नमः पृष्ठवंशे ।
भं युगरूपायै गौर्यै नमः नाभौ ॥
मं प्रलयरूपायै भवान्यै नमः हृदये ।

यं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यपञ्चभूतरूपायै ब्राह्म्यै नमः दक्षांसे ॥

रं शब्दस्पर्शरूपरसगंधाख्यपञ्चतन्मात्ररूपायै वागीश्वर्यै नमः वामांसे ।

लं वाक्पाणिपादपायूपस्थाख्यपञ्चकर्मेन्द्रियरूपायै वाण्यै नमः अपरगले ॥

वं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणाख्यपञ्चज्ञानेन्द्रियरूपायै सावित्र्यै नमः दक्षकक्षे ।

शं प्राणापानव्यानोदानसमानाख्यपञ्चप्राणरूपायै सरस्वत्यै नमः वामकक्षे ।

षं सत्त्वरजतमाख्यगुणत्रयरूपायै गायत्र्यै नमः हृदयादि-दक्षपाणिपर्यंतं ।

सं मनोबुद्ध्यहंकारचित्ताख्यान्तःकरणचतुष्टयरूपायै वाक्प्रदायै नमः हृदयादिवामपाणिपर्यंतं ॥

हं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयावस्थाचतुष्टय रूपायै शारदायै नमः हृदयादिदक्षपादान्तं ।

ळं त्वगसृग्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राख्यसप्तधातुरूपायै भारत्यै नमः हृदयादि वामपादान्तं ।

त्तं वातपित्तश्लेष्माख्यदोषत्रयरूपायै विद्यात्मिकायै पञ्चभूतव्यापिकाधीश्वर्यै नमः हृदयादिभ्रूयुगान्तं।

अं...त्तं मूलं सकलप्रपञ्चरूपायै पराम्बा देव्यै नमः सर्वाङ्गे व्यापकं ॥

भुवनन्यास

निम्नलिखित प्रत्येक मन्त्र के आदि में 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः' जोड़कर न्यास करे। यथा—

अं आं इं अतललोकनिलयशतकोटिगुह्याख्ययोगिनीदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः पादयोः। ईं उं ऊं वितललोकनिलयशतकोट्यतिगुह्ययोगिनी– मूलदेवतायुतानन्दशक्त्यम्बादेव्यै नमः गुल्फयोः। ऋं ॠं ऌं सुतललोकनिलयशतकोट्यतिगुह्ययोगिनीमूलदेवतायुताचिन्त्यशक्त्यम्बादेव्यै नमः जंघयोः। ॡं एं ऐं महातललोकनिलयशतकोटिमहागुह्याख्ययोगिनीमूलदेवतायुतस्वातंत्र्यशक्त्यंबादेव्यै नमः जान्वोः। ओं औं तलातललोकनिलयशतकोटिरहस्ययोगिनीमूलदेवतायुतपरमगुह्येच्छाशक्त्यम्बा देव्यै नमः ऊर्वोः। अं अः रसातललोकनिलयशतकोटिरहस्ययोगिनीमूलदेवतायुतज्ञानशक्त्यम्बादेव्यै नमः गुह्ये। कं-५ पाताललोकनिलयशतकोटि-रहस्यातिरहस्ययोगिनीमूलदेवता-युतक्रियाशक्त्यम्बादेव्यै नमः मूलाधारे। चं-५ भूर्लोकनिलयशतकोट्यतिरहस्ययोगिनीमूलदेवतायुतश्रीडाकिनीशक्त्यम्बादेव्यै नमः स्वाधिष्ठाने। टं-५ भुवर्लोकनिलयशतकोटिमहारहस्ययोगिनीमूलदेवतायुतश्रीराकिणीशक्त्यम्बादेव्यै नमः नाभौ। तं-५ स्वर्लोकनिलयशतकोटिपरमरहस्ययोगिनीमूलदेवतायुतलाकिनीशक्त्यम्बादेव्यै – नमः हृदये। पं-५ महर्लोकनिलयशतकोटिगुप्तयोगिनीमूलदेवतायुतश्रीकाकिनीशक्त्यम्बादेव्यै नमः तालुमूले। यं-४ जनलोकनिलयशतकोटिगुप्ततरयोगिनी-मूलदेवतायुत-श्रीशाकिनीशक्त्यम्बादेव्यै

नमः आज्ञायाम् । शं-४ तपोलोकनिलयशतकोट्यतिगुप्तयोगिनी-मूलदेवतायुतहाकिनीशक्त्यम्बादेव्यै नमः ललाटे । ळं क्षं सत्य-लोकनिलयशतकोटिमहागुप्तयोगिनीमूलदेवतायुतयाकिनीश-क्त्यम्बादेव्यै नमः ब्रह्मरन्ध्रे । अं...क्षं चतुर्दशभुवनाधिपायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः सर्वाङ्गे व्यापकं ।

मूर्तिन्यास

निम्नलिखित प्रत्येक मन्त्र के आदि में पूर्ववत् 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः' जोड़कर न्यास करे । यथा—

अं केशवाक्षरशक्तिभ्यां नमः ललाटे । आं नारायणाद्याभ्यां नमः दक्षमुखे । इं माधवेष्टदाभ्यां नमः दक्षस्कंधे । ईं गोविन्देशानीभ्यां नमः दक्षकुक्षौ । उं विष्णूग्राभ्यां नमः दक्षिणोरौ । ऊं मधुसूदनोध्वनयनाभ्यां नमः दक्षजानुनि । ऋं त्रिविक्रमऋद्धिभ्यां नमः दक्षजङ्घायाम् । ॠं वामनरूपिणीभ्यां नमः दक्षपादे । ऌं श्रीधरलुप्ताभ्यां नमः वामपादे । ॡं हृषीकेशलूनदोषाभ्यां नमः वामजङ्घायाम् । एं पद्मनाभैकनायिकाभ्यां नमः वामजानुनि । ऐं दामोदरैङ्कारिणीभ्यां नमः वामोरौ । ओं वासुदेवौघवतीभ्यां नमः वामकुक्षौ । औं संकर्षणसर्वकामाभ्यां नमः वामस्कंधे । अं प्रद्युम्नाञ्जनप्रभाभ्यां नमः वाममुखे । अः अनिरुद्धास्थिमालाधराभ्यां नमः वाममस्तके । कं भं भवकरभद्राभ्यां नमः दक्षपादे । खं बं शर्वखगबलाभ्यां नमः वामपादे । गं फं रुद्रगरिमादिफलप्रदाभ्यां नमः दक्षपार्श्वे । घं पं पशुपतिघर्मप्रशमनीभ्यां नमः वामपार्श्वे । ङं नं उग्रपङ्क्तिनासाभ्यां नमः दक्षबाहौ । चं धं महादेवचन्द्रार्ध-धारिणीभ्यां नमः वामबाहौ । छं दं भीमछन्दोमयीभ्यां नमः कंठे । जं थं ईशानजगत्स्थानाभ्यां नमः ऊर्ध्वास्ये । झं तं तत्पुरुष-झरत्ताराभ्यां नमः पूर्वास्ये । ञं णं अघोरज्ञानफलप्रदाभ्यां नमः दक्षिणास्ये । टं ढं सद्योजातटङ्कधराभ्यां नमः पश्चिमास्ये । ठं डं

वामदेवठंकारडामरीभ्यां नमः वामास्ये । यं ब्रह्मयक्षिणीभ्यां नमः मूलाधारे। रं प्रजापतिरंजिनीभ्यां नमः स्वाधिष्ठाने। लं वेधाः लक्ष्मीभ्यां नमः मणिपूरे। वं परमेष्ठिवज्रिणीभ्यां नमः अनाहते। शं पितामहशक्तिधारिणीभ्यां नमः विशुद्धौ। षं विधातृषडाधाराभ्यां नमः आज्ञायाम् । सं विरिञ्चिसर्वनायिकाभ्यां नमः इन्दौ। हं स्रष्टुहसिताननाभ्यां नमः बिन्दौ। ळं चतुराननललिताभ्यां नमः नादे। क्षं हिरण्यगर्भक्षमाभ्यां नमः नादान्ते। अं...क्षं हरिहरब्रह्माख्यमूर्त्यात्मिकायै पराम्बादेव्यै नमः सर्वाङ्गे व्यापकं।

मन्त्रन्यास

पूर्ववत् निम्न मन्त्रों के आदि में 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः' जोड़कर न्यास करे। यथा—

अं आं इं एकलक्षकोटिभेदप्रणवाद्येकाक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधिदेवतायै नमः सकलफलप्रदायै एककूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः मूलाधारे। ईं उं ऊं द्विलक्षकोटिभेदहंसादिद्व्यक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधिदेवतायै नमः सकलफलप्रदायै द्विकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः लिंगे। ऋं ॠं लृं त्रिलक्षकोटिभेदवह्न्यादित्र्यक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै त्रिकूटेश्वर्यम्बायै नमः नाभौ। लॄं एं ऐं चतुर्लक्षकोटिभेदचन्द्रादिचतुरक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै चतुःकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः हृदये। ओं औं अं अः पञ्चलक्षकोटिभेदसूर्यादिपञ्चाक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै पञ्चकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः कण्ठे। कं खं गं षडलक्षकोटिभेदस्कन्दादिषडक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै षट्कूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः मुखे। घं ङं चं सप्तलक्षकोटिभेदगणेशादिसप्ताक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधिदेवतायै सकलफल-

प्रदायै सप्तकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः नेत्रयोः। छं जं झं अष्टलक्ष-कोटिभेदबटुकाद्यष्टाक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै अष्टकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः आज्ञायाम्। ञं टं ठं नवलक्षकोटिभेदब्रह्मादिनवाक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधि-देवतायै सकलफलप्रदायै नवकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः इन्दौ। डं ढं णं दशलक्षकोटिभेदविष्ण्वादिदशाक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै दशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः बिन्दौ। तं थं दं एकादशलक्षकोटिभेदरुद्राद्येकादशाक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै एकादशकूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः कलायां। धं नं पं द्वादशलक्षकोटिभेदसारस्वत्यादि-द्वादशाक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै द्वादशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः उन्मन्याम्। फं बं भं त्रयोदश-लक्षकोटिभेदलक्ष्म्यादित्रयोदशाक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधि-देवतायै सकलफलप्रदायै त्रयोदशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः शिरो-वृत्ते। मं यं रं चतुर्दशलक्षकोटिभेदगौर्यादिचतुर्दशाक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै चतुर्दशकूटेश्वर्य-म्बादेव्यै नमः नादे। लं वं शं षं पञ्चदशलक्षकोटिभेददुर्गादि-पञ्चदशाक्षरात्मिकायै नमः सकलफलप्रदायै पञ्चदशकूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः नादांते। सं हं ळं क्षं षोडशलक्षकोटिभेदत्रिपुरादि-षोडशाक्षरात्मिकायै नमः सकलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै षोडशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः ब्रह्मरन्ध्रे। अं...क्षं सर्वमन्त्रात्मिकायै पराम्बादेव्यै नमः सर्वाङ्गे व्यापकं।

दैवतन्यास

पूर्ववत् निम्न मन्त्रों के आदि में 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः' जोड़ ले—

अं आं सहस्रकोटिऋषिकुलसेवितायै निवृत्त्यम्बादेव्यै नमः

दक्षिणपादाङ्गुष्ठे। इं ईं सहस्रकोटियोगिनीकुलसेवितायै प्रतिष्ठाम्बादेव्यै नमः दक्षगुल्फे। उं ऊं सहस्रकोटितपस्विकुलसेवितायै विद्याम्बादेव्यै नमः दक्षजंघायाम्। ऋं ॠं सहस्रकोटिऋषिकुलसेवितायै शान्त्यम्बादेव्यै नमः दक्षजानुनि। लृं ॡं सहस्रकोटिमुनिकुलसेवितायै शान्त्यतीताम्बादेव्यै नमः दक्षोरौ। एं ऐं सहस्रकोटिदेवकुलसेवितायै हृल्लेखाम्बादेव्यै नमः दक्षकट्यां। ओं औं सहस्रकोटिराक्षसकुलसेवितायै गगनाम्बादेव्यै नमः दक्षपार्श्वे। अं अः सहस्रकोटिविद्याधरकुलसेवितायै रक्ताम्बादेव्यै नमः दक्षस्तने। कं खं सहस्रकोटिसिद्धकुलसेवितायै महोच्छुष्माम्बादेव्यै नमः दक्षकक्षे। गं घं सहस्रकोटिसाध्यकुलसेवितायै करालाम्बादेव्यै नमः दक्षकरे। ङं चं सहस्रकोटिअप्सरकुलसेवितायै जयाम्बादेव्यै नमः दक्षस्कन्धे। छं जं सहस्रकोटिगन्धर्वकुलसेवितायै विजयाम्बादेव्यै नमः दक्षकर्णे। झं ञं सहस्रकोटिगुह्यककुलसेवितायै अजिताम्बादेव्यै नमः दक्षशिरसि। टं ठं सहस्रकोटियक्षकुलसेवितायै अपराजिताम्बादेव्यै नमः वामशिरसि। डं ढं सहस्रकोटिकिन्नरकुलसेवितायै वामाम्बादेव्यै नमः वामकर्णे। णं तं सहस्रकोटिपन्नगकुलसेवितायै ज्येष्ठाम्बादेव्यै नमः वामस्कन्धे। थं दं सहस्रकोटिपितृकुलसेवितायै रौद्र्यम्बादेव्यै नमः वामकरे। धं नं सहस्रकोटिगणेशकुलसेवितायै मायाम्बादेव्यै नमः वामकक्षे। पं फं सहस्रकोटिभैरवकुलसेवितायै कुण्डलिन्यम्बादेव्यै नमः वामस्तने। बं भं सहस्रकोटिबटुककुलसेवितायै काल्यम्बादेव्यै नमः वामपार्श्वे। मं यं सहस्रकोटिक्षेत्रपालकुलसेवितायै सर्वैश्वर्यम्बादेव्यै नमः वामजानुनि। रं लं प्रमथकुलसेवितायै भगवत्यम्बादेव्यै नमः वामोरौ। वं शं सहस्रकोटिब्रह्मकुलसेवितायै सर्वैश्वर्यम्बादेव्यै नमः वामजानुनि। षं सं सहस्रकोटिविष्णुकुलसेवितायै सर्वज्ञाम्बादेव्यै नमः वामजङ्घायाम्। हं ळं सहस्र-

कोटिरुद्रकुलसेवितायै सर्वकर्त्र्यम्बादेव्यै नमः वामगुल्फे क्षं ।
सहस्रकोटिचराचरकुलसेवितायै पराशक्त्यम्बादेव्यै नमः वामपादाङ्गुष्ठे। अं आं...क्षं सर्वदेवतात्मिकायै पराशक्त्यम्बादेव्यै नमः सर्वाङ्गे व्यापकं ।

मातृकान्यास

निम्नलिखित प्रत्येक मन्त्रों के आदि में 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः' जोड़कर न्यास करे। यथा—

कं-४ अनन्तकोटिभूचरीकुलसहितायै आं क्षां मङ्गलाम्बादेव्यै आं क्षां ब्रह्माण्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिभूतकुलसहितायै अं क्षं मङ्गलनाथाय अं क्षं असिताङ्गभैरवनाथाय नमः मूलाधारे। चं-४ अनन्तकोटिखेचरीकुलसहितायै ईं लां चर्चिकाम्बादेव्यै ईं लां माहेश्वर्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिवैतालकुलसहितायै इं लं चर्चिकनाथाय इं लं रुरुभैरवनाथाय नमः लिङ्गे। टं-४ अनन्तकोटिपातालखेचरीकुलसहितायै ऊं हां योगेश्वर्यम्बादेव्यै ऊं हां कौमार्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिपिशाचकुलसहितायै ऊं हां योगीशाय ऊं हां चण्डभैरवनाथाय नमः नाभौ। तं-४ अनन्तकोटिदिक्चरीकुलसहितायै ॠं सां हरसिद्धाम्बादेव्यै ॠं सां वैष्णव्यम्बादेव्यै अनन्तकोट्यपस्मारसहितायै ॠं सं हरसिद्धनाथाय ॠं सं क्रोधभैरवनाथाय नमः हृदये। पं-४ अनन्तकोटिसहचरीकुलसहितायै ॡं षां भट्टिन्यम्बादेव्यै ॡं षां वाराह्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिब्रह्मराक्षसकुलसहितायै ॡं षं भट्टिनाथाय ॡं षं उन्मत्तभैरवनाथाय नमः कण्ठे। यं-३ अनन्तकोटिगिरिचरीकुलसहितायै ऐं शां किलिकिलाम्बादेव्यै ऐं शां इन्द्राण्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिचेटककुलसहितायै ऐं शं किलिकिलिनाथाय ऐं शं कपालीभैरवनाथाय नमः आज्ञायां। शं-३ अनन्तकोटिवनचरीकुलसहितायै औं वां कालरात्र्यम्बादेव्यै औं वां चामुण्डाम्बादेव्यै अनन्तकोटिप्रेतकुलसहिताय औं वं कालरात्रिनाथाय औं वं भीषणभैरवनाथाय

नमः भाले । कं क्षं अनन्तकोटिजलचरीकुलसहितायै अः लां भीषणाम्बादेव्यै अः लां महालक्ष्म्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिकूष्माण्ड-कुलसहितायै अः लं भीषणनाथाय अः लं संहारभैरवनाथाय नमः ब्रह्मरन्ध्रे । अं आं···क्षं मातृभैरवाधिपायै परास्बादेव्यै नमः सर्वाङ्गे व्यापकं।

इस प्रकार न्यास कर अपने हृदयकमल में अर्द्धनारीश्वर भगवान् शिव का ध्यान करे। यथा—

अमृतार्णवमध्योद्यन्मणिद्वीपे सुशोभिते ।
कल्पवृक्षवनान्तस्थनवमाणिक्यमण्डपे ॥
नवरत्नमयं श्रीमत्सिंहासनगतेऽम्बुजे ।
त्रिकोणान्तःसमासीनं चन्द्रसूर्यसमन्वितम् ॥
अर्द्धाम्बिकासमायुक्तं प्रविभक्तविभूषणम् ।
कोटिकन्दर्पलावण्यं सदा षोडशवार्षिकम् ॥
मन्दस्मितमुखाम्भोजं त्रिनेत्रं चन्द्रचूडकम् ।
दिव्याम्बरस्रगालेपं दिव्याभरणभूषितम् ॥
पानपात्रं च चिन्मुद्रां त्रिशूलं पुस्तकं करैः ।
विद्यासंसिद्धिबिभ्राणं सदानन्दमुखेक्षणम् ॥
महाषोढोदिताशेषदेवतागणसेवितम् ।

फिर योनि, लिङ्ग, सुरभि, वनमाला, महामुद्रा, नभोमुद्रा दिखाकर यथाशक्ति मूलमन्त्र का जप कर श्रीपादुका का भी जप करे। मूर्धि में शिवस्वरूप श्रीगुरुदेव का ध्यान करे। यथा—

सहस्रदलपङ्कजे सकलशीतरश्मिप्रभम् ।
वराभयकराम्बुजं विमलगन्धपुष्पस्रजम् ॥
प्रसन्नवदनेक्षणं सकलदेवतारूपिणम् ।
स्मरेत् शिरसि हंसगं तदभिधानपूर्वं गुरुम् ॥

इस प्रकार षोढान्यास जो प्रतिदिन करता है, हे पार्वति !

वह साक्षात् पर-शिव के समान होता है। सभी देवता उसे नमस्कार करते हैं। जहाँ कहीं वह जाता है, उसे विजय, सम्मान और गौरव प्राप्त होता है। इसी का नाम वज्रपञ्जरन्यास है। देवताभाव की प्राप्ति के लिये इससे बढ़कर संसार में और कोई साधन नहीं है, यह मैं सत्य कहता हूँ। ऊर्ध्वाम्नाय में प्रवेश, पराप्रासाद का ध्यान और महाषोढा का ज्ञान यह थोड़ी तपस्या का फल नहीं है। हे कुलेशानि! यह संक्षेप में मैंने कुछ महान्यासादि तुमसे कहा है। अब तुम क्या सुनना चाहती हो?



पाँचवाँ उल्लास

आधार, पात्र और कुलद्रव्य

श्री देवी बोलीं—हे कुलेश ! आधारपात्रों का लक्षण और कुलद्रव्य के भेदों तथा माहात्म्य को कहिए। अविधि से जो पाप होता है और सविधि से जो फल मिलता है, हे करुणा-निधे ! मैं वह सब सुनना चाहती हूँ।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो। विना आधार के भ्रंश माना जाता है, जिसे माताएँ स्वीकार नहीं करतीं। अतः विविध आधारों में से किसी एक की रचना कर लेनी चाहिये। आधार त्रिपद, चतुष्पद, षट्पद या वर्तुलाकार बनवाए।

पात्र बहुत छोटा, बहुत बड़ा या टूटा-फूटा न ले। स्वर्ण, रौप्य और ताम्र के पात्र सभी सिद्धियों के देनेवाले हैं। शांति-कर्म में चपला पात्र, स्तम्भन में मृण्मय, वश्य में नारिकेल और अभिचार में कूर्मपात्र प्रशस्त है। शङ्खपात्र ज्ञान-प्रदायक है और शुक्तिपात्र से देवी को प्रसन्नता होती है। कपाल, अलाबु और पुण्यक्षेत्र के पात्र सब पापों का हरण करनेवाले होते हैं। इनमें से किसी एक पात्र की कल्पना करे। हे देवि ! अब कुल-द्रव्य का वर्णन करूँगा, ध्यान से सुनो।

पानस, द्राक्ष, आध्वीक, खार्जूर, ताल, ऐक्षव, मधु, उच्छिष्ट, माध्वीक, मैरेय और नारिकेल—ये ग्यारह मद्य भुक्ति व मुक्ति की देनेवाले हैं। बारहवीं सुरा है, जो सबसे उत्तम है। सुरा तीन प्रकार की है—पैष्टी, गौड़ी और माध्वी। पैष्टी सब सिद्धियों की देनेवाली, गौड़ी भोगप्रदा और माध्वी सुरा मुक्ति-

कारिणी है। पंचवी विद्याप्रदा, द्राक्षा राज्यदायिनी है। तालजा स्तम्भन में प्रशस्त है और खाजूरी शत्रुनाशिनी है। नारिकेल की वनी लक्ष्मीदायिनी और पानसी शुभकारिणी है। मधु की वनी ज्ञानदायिनी और दारिद्र्य तथा शत्रुनाशिनी है। मैरेय सदा पापहारिणी होती है।

मदिरा ब्रह्मगा और चित्त का शोधन करनेवाली कही गई है। अतः उपर्युक्त में से एक को लेकर पूजाकर्म का प्रारम्भ करना चाहिये। मद्य, मांस और विजया को अष्टगन्ध के साथ मर्दित कर साधक वटिका बना ले और मद्य के अभाव में इसी वटिका को जल में मिलाकर उससे तर्पण किया करे। अथवा गुड़ मिले दही से अथवा मधुयुक्त सौवीर से कर्म करे। किन्तु क्रिया का लोप कदापि न करे।

मांस तीन प्रकार का कहा गया है--खेचर का, भूचर का और जलचर का। तर्पण के लिए इन्हीं की यथा सम्भव कल्पना करे। गन्ध-पुष्पाक्षत से पशु की पूजा कर निम्न मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित कर उसकी बलि दे--

शिवोत्कृत्तमिदं चाशु अतस्तां शिवतां व्रजेत्।
तद्बुद्ध्वाशु पशो! त्वं हि माशिवस्त्वं शिवोसि हि॥

उसके जल में ब्रह्मा, गन्ध में विष्णु, रस में रुद्र और आनन्द में परमात्मा का वास है। अतः वह सेवनीय है। मांस का अभाव होने पर लहसुन और अदरक से देवी की पूजा करे, अन्यथा पूजा निष्फल होती है।

मत्स्य, मांस और मद्य से रहित तर्पण नहीं करना चाहिये। तिल मात्र ही मांस और केवल आधे तिल मात्र मद्यविन्दु से एक बार भी तर्पण करने से समस्त यज्ञों का फल प्राप्त होता है। कुलपूजा के समान तीनों जगत् में कोई पुण्य नहीं है। अतएव जो भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह भुक्ति और मुक्ति

को प्राप्त करता है। हे देवि ! जो भक्ति के साथ हम दोनों को मांस और आसव अर्पित कर अन्तर्याग में तत्पर होकर आनन्द का उद्भाव करते हैं, वे कौलिक हम दोनों ही के सच्चिदानन्द लक्षण से युक्त स्वरसवाले होते हैं। अन्तःस्थित उल्लास का अनुभव मन और वाणी के परे है। वह कुलद्रव्य के उपभोग से ही परिस्फुरित होता है, किसी अन्य उपाय से नहीं। अतः कुलद्रव्य का सेवन करने से कुलतत्त्व का अर्थ ज्ञात होता है और भैरवावेश का उद्रेक होकर साधक सर्वत्र समदर्शी होता है।

मन्त्र-संस्कार से शोधित अमृत-पान के द्वारा हे पार्वति ! संसार बन्धन से छुड़ानेवाला देवता भाव जाग्रत् होता है। ब्राह्मण के लिए यह अमृत सदा पेय है, क्षत्रिय के लिए युद्ध के आसन्न होने पर, वैश्य के लिए यज्ञ के अवसर पर और शूद्र के लिए श्रमसाध्य कार्य होने पर यह पेय है। देवताओं और पितरों की पूजा कर गुरुदेव का स्मरण करते हुए शास्त्रोक्त विधि से मद्यपान और मांस-भोजन करने से कोई दोष नहीं होता। मन्त्रार्थ के स्मरण और मन की स्थिरता के लिए तथा संसार बन्धन से मुक्ति पाने के लिए ज्ञानपूर्वक पान करना चाहिए। अन्यथा जो केवल सुख के लिए इसका सेवन करता है, वह पापी होता है।

कौलोपदेश से हीन व्यक्ति यदि मद्य, स्त्री आदि में आसक्त होता है, तो वह अक्षय नरक को प्राप्त होता है। हे कुलेशि ! ब्रह्मनिष्ठ योगी भी निन्दनीय होता है। अतः लिङ्गत्रय का जाननेवाला और षट्चक्रों का भेदक योगी पीठस्थानों में आकर महापद्मवन में स्थित हो। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक बारम्बार जाकर चिच्चन्द्रकुण्डलीशक्ति रूपी आसव के सुख का अनुभव करे। व्योमपङ्कज से निकलते हुए अमृतपान में संलग्न योगी ही मधुपान करता है। अन्य लोग तो मद्यप हैं। पुण्य और

पापरूपी पशु को ज्ञानरूपी खड्ग से मारकर मन से इन्द्रियों को आत्मा में संयुक्त कर चित्त को परतत्त्व में लगानेवाला योगी मांसभोजक है। शेष लोग तो प्राणिहिंसक मात्र हैं। शक्तियों का जो सेवक योगी परशक्ति और अपनी आत्मा के संयोग से होनेवाले आनन्द का अनुभव करता है, वही मैथुन का मर्मज्ञ है। अन्य लोग तो स्त्री सेवी मात्र हैं। इस प्रकार गुरु मुख से पाँचों द्रव्यों की भावना जानकर जो साधना करता है, वह मुक्त होता है।

यह मैंने संक्षेप में तुमसे कहा। अब हे कुलेशादि ! तुम क्या सुनना चाहती हो ?



छठा उल्लास

पूजा-रहस्य और द्रव्य-संस्कार

देवी बोली—हे कुलेश ! मैं पूजन का लक्षण सुनना चाहती हूँ। हे शिव ! मुझे कुलद्रव्यादि का संस्कार और अर्चन बताओ।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो, जो तुमने पूछा है, उसे मैं कहूँगा। पूर्णाभिषेक से युक्त साधक गुरुभक्तिपूर्वक आत्मनिष्ठ होकर मन्त्रयोग से श्रीचक्रार्चन करे। 'मैं भैरव हूँ'—इस प्रकार की अनुभूति के साथ साधक कुलपूजा करे। एकान्त स्थान में, किसी वन-प्रदेश में या बाधारहित स्थान में सूक्ष्मासन पर पूर्व या उत्तर मुख बैठकर अमृतसागर में स्थित मणिद्वीप में कल्पवृक्ष के नीचे वज्रप्राकार से सुरक्षित माणिक्यमण्डप का ध्यान करे, जो पुष्पमालाओं के वितान से सुशोभित है और कर्पूरदीप से प्रकाशमान तथा धूपादि से सुगन्धित है। उस मण्डप को सुधास्वरूप ध्यानकर कुलपूजा करे। पहले आत्म, स्थान, मनु (मन्त्र), द्रव्य और देव इन पञ्चशुद्धियों को कर ले।

सुन्दर स्नान, भूतशुद्धि, प्राणायाम, षडङ्गादि समस्तन्यासों से आत्मशुद्धि होती है। पूजास्थल को सम्मार्जन, अनुलेपन आदि के द्वारा दर्पणवत् स्वच्छ करना, वितान-धूप-दीप-पुष्पमाला, पञ्चरङ्गों से सजाना ही स्थानशुद्धि कही गई है। मूलमन्त्रों के अक्षरों को मातृकावर्णों से ग्रथित कर क्रमपूर्वक द्विरावृत्ति करने से मन्त्रशुद्धि होती है। पूजा-द्रव्य और आसन का मूलमन्त्र से प्रोक्षण कर धेनुमुद्रा दिखावे—यह द्रव्यशुद्धि है। पीठ में देवता की प्राणप्रतिष्ठा कर उसके विग्रह का

सकलीकरण कर मूलमन्त्र से दीप्तात्मा हो न्यासद्रव्योदक से तीन बार उसका प्रोक्षण करे—यह देवशुद्धि कही गई है।

इस प्रकार पञ्चशुद्धि कर पूजन करे। तभी पूजन सफल होता है। मण्डल के बिना पूजा निष्फल होती है। अतः मण्डल की रचना कर विधिपूर्वक उसमें पूजा करे। चतुरस्र उद्यान है, वृत्त कामरूप है, चन्द्रार्द्ध जालन्धर है और त्रिकोण पूर्णगिरि है। ऐसे मण्डल की पूजा कर उस पर आधार रखे। आधार पर शंख, अर्घ्य, भोग, पूजा और बलि ये पाँच पात्र क्रमशः स्थापित करे। पात्र का मूलमन्त्र से पूजन कर उसमें माष-बराबर मत्स्य और मांसखण्ड छोड़े।

अमृत-वत् स्वादिष्ट, सुगन्धित और मनोहर द्रव्य द्वारा जो तर्पण किया जाता है, वही सिद्धिदायक होता है। बासी, जूठे, दुर्गन्धयुक्त या गन्धहीन द्रव्य से स्थापित पात्रों से जो पूजन-तर्पण किया जाता है, वह निष्फल होता है। असंस्कृत सुरा का पान करने से कलह, व्याधि और दुःख की प्राप्ति होती है। अतः कुलद्रव्य का सविधि संस्कार कर ले। तब अर्चन करे। द्रव्यों की प्रतिष्ठा किए बिना न जप करे, न स्मरण करे। आसव के बिना मन्त्र मन्त्र नहीं होता और मन्त्र के बिना आसव निरर्थक होता है। वीक्षण, प्रोक्षण, ध्यान, मन्त्र और मुद्रा से शोधित द्रव्य द्वारा तर्पण करने से देवता प्रसन्न होता है।

पहले अग्नि की धूम्रार्चि आदि १०, सूर्य की तपिनी आदि १२, चन्द्र की अमृतादि १६, ब्रह्मा की सृष्टि आदि १०, विष्णु की जरादि १०, रुद्र की तीक्ष्णादि १०, ईश्वर की पीतादि ४, और सदाशिव की निवृत्यादि १६ कलाओं का पूजन द्रव्य में करे। ब्रह्मकलाओं के पूजन के बाद 'हंसश्शुचि०' इत्यादि मन्त्र से, विष्णुकलाओं के बाद 'प्रतद्विष्णु०' इत्यादि से, रुद्रकलाओं के बाद 'त्र्यम्बकं०' इत्यादि से, ईश्वरकलाओं के बाद 'तद्विष्णोः'

इत्यादि से और सदाशिवकलाओं के पूजन के बाद 'विष्णुर्योनि०' इत्यादि मन्त्र से पूजन करे। फिर 'अखण्डैकरसानन्द०' इत्यादि दीपिनी मन्त्रों से पूजा कर धेनुमुद्रा दिखाकर 'ब्रह्माण्डसम्भूत०' इत्यादि मन्त्र पढ़कर पात्र को नमस्कार करे। इस प्रकार शुद्ध किए गए द्रव्य से और उसी से शुद्धीकृत पुष्पाक्षतों से न्यासोक्त सभी मन्त्रों द्वारा हे प्रिये! अपनी पूजा करे। मूर्ध्नि में श्रीगुरुपंक्ति की और मूलाधार में श्रीपादुका की पूजा करे। तदनन्तर पीठपूजा कर देवी का 'महापद्मवनान्तस्थे०' इत्यादि मन्त्र से आवाहन कर, ध्यानपूर्वक, मुद्राएँ दिखाकर गन्धपुष्पाक्षतों से उनकी पूजा करे। यन्त्र में प्राणप्रतिष्ठा कर अर्चन करे, अन्यथा कोई फल नहीं होता। पूजन के बाद 'मन्त्रहीनं क्रियाहीनं' इत्यादि प्रार्थना द्वारा क्षमायाचना करे।❀

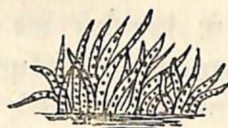
देवता को, यन्त्र के स्वरूप को और मन्त्र की व्यापकता को जाने बिना जो अर्चन किया जाता है, वह हे शाम्भवि! व्यर्थ होता है। 'यन्त्र' साक्षात् देवता का रूप और मन्त्रमय होता है। कामक्रोधादि दोषों और सभी प्रकार के दुःखों पर नियन्त्रण रखने के कारण इसका नाम 'यन्त्र' पड़ा है। यन्त्र में पूजा करने से देवता प्रसन्न होता है। जीव के लिए जैसे शरीर है और दीपक के लिए जैसे तेल या घी है, उसी प्रकार सभी देवताओं के लिए उनका प्रतिष्ठित यन्त्र होता है। अतः यन्त्र रचना कर देवता की पूजा करे। एक पीठ में पृथक् देवताओं की पूजा उनके अलग यन्त्रों में उनकी पद्धति से उनके आवरणों के सहित करे। एक देवता का आवाहन करे

❀ देवता का यह पूजाविधान तत्तद्देवताओं की पूजा-पद्धतियों में विस्तार से दिया है। जिज्ञासु पाठक वहाँ देखने की कृपा करें।

और पूजन अन्य देवता का करे तो दोनों ही देवताओं का शाप साधक को प्राप्त होता है। इन सब बातों को गुरुदेव से जानकर शास्त्रीय विधि से अङ्गों और आवरणों सहित देवता की षोडशोपचारों से पूजा करे, तो वह प्रसन्न होता है।

मूलमन्त्र और पादुका का जपकर अन्तःशक्ति का स्मरण कर अंगुष्ठ और अनामिका के संयुक्त नख से पात्रस्थ द्रव्य को ऊपर निकाल कर वीर साधक विधिपूर्वक तर्पण करे। अंगुष्ठ भैरव-रूप है और अनामा चण्डिकारूपा है। अनामा अंगुष्ठ के योग से वश्यकर्म में, तर्जनी-अंगुष्ठ के योग से अभिचार में और कनिष्ठांगुष्ठ से स्तम्भन में तर्पण करे।

इस प्रकार पूजा-रहस्य और कुलद्रव्य का संस्कार मैंने संक्षेप में कहा। अब हे देवि! तुम क्या सुनना चाहती हो?



सातवाँ उल्लास

बटुक और शक्ति-पूजन

देवी बोलीं—हे कुलेश ! बटुकादि को बलिप्रदान और शक्ति के लक्षणों के सम्बन्ध में अब मुझे बताइए।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो, जब तक बटुक को बलि अर्पित नहीं की जाती, तब तक किसी देवता की तृप्ति नहीं होती। अतः बटुकादि को उनके मन्त्र-विधान से गन्ध-पुष्प-आसव और आमिष प्रदान कर देवता की प्रसन्नता को प्राप्त करे।

'ॐ ॐ ॐ देवीपुत्र बटुकनाथ कपिलजटाभारभासुर पिङ्गल त्रिनेत्र ज्वालामुख इमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा'—इस मन्त्र से बटुक को बलि देकर यह प्रार्थना करे—

'बलिदानेन सन्तुष्टो बटुकः सर्वसिद्धिदः।
शान्तिं करोतु मे नित्यं भूतवेतालसेवितः।'

'ॐ ॐ ॐ सर्वयोगिनीभ्यः सर्वभूतेभ्यः सर्वभूताधिपाय डाकिनीभ्यः शाकिनीभ्यः त्रैलोक्यविपद्वासिनीभ्य इमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा'—से योगिनियों को बलि देकर यह प्रार्थना करे—

या काचित् योगिनी रौद्रा सौम्या सौम्यतरा यदि।
खेचरी भूचरी व्योमचरी प्रीतास्तु मे सदा॥

'ॐ ॐ ॐ सर्वभूतेभ्यः सर्वभूतपतिभ्यो हुं फट्'—से

सर्वभूतों को बलि देकर यह प्रार्थना करे—'भूता ये विविधाकारा दिक्षु भौमान्तरीक्षगाः। पातालसंस्था ये केचिच्छिवे ! ये च न भाविताः॥ ब्रह्माद्याः सत्यसन्धाश्च भृत्याः शक्त्युपबृंहिताः। तृप्यन्तु प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिं।'

'ॐ ॐ ॐ देवी-पुत्र सर्वविघ्नान्नाशय नाशय सर्वोपचारसहितामिमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा, अयं भैरवाधिष्ठिताय अक्षोभ्यवन्दितः हृदयाधिष्ठितं सिद्धार्थं अवतर अवतर क्षेत्रपाल क्षेत्रपाल महाक्षेत्र ग्रामाधिपतेऽदेशाधिपते वटुकनाथ देवीपुत्र मेघनाद प्रचण्डोग्र कपाली भीषण सर्वविघ्नाधिपते इमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण कुरु कुरु मम दूरय दूरय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल सर्वविघ्नान् नाशय नाशय ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रं मातृपुत्र कुलपुत्र क्षेत्रपालाय वौषट् हुं।

ॐ ॐ ॐ अमुक क्षेत्रपाल राजराजेश्वर इमां पूजा बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' से क्षेत्रपाल को बलि देकर यह प्रार्थना करे—'अनेन बलिदानेन वटुबद्ध-समन्वितः राजराजेश्वरो देवो मे प्रसीदतु सर्वदा।'

वटुक को पश्चिम में, योगिनी को उत्तर में, सर्वभूत को पूर्व में और क्षेत्रपाल को दक्षिण में बलि प्रदान कर मध्य में राजराजेश्वर की पूजा करे। अंगुष्ठ-अनामिका से वटुक को, तर्जनी-मध्यमा-अनामा-अंगुष्ठ से योगिनी को, सभी अँगुलियां से सर्वभूत को, अंगुष्ठ-तर्जनी से क्षेत्रपाल को और अंगुष्ठ-मध्यमा से राजराजेश्वर को बलि दे।

इस प्रकार वटुकादि की पूजा कर कुलदीपों की पूजा करे। चार अंगुल बड़े डमरु के आकार के तीन कोनेवाले दीपक आटे से बनावे। दीपक ऐसे हों कि उनमें एक कर्ष घी आ

जाय। नौ, सात या पाँच दीपकों की योजना कर अन्तस्तेज को बहिस्तेज से मिलाते हुए अमितप्रभा वाले दीपकों को तीन बार देवी के ऊपर घुमाकर कुलदीपकों को इस मन्त्र से निवेदित करे—समस्त चक्रचक्रेशियुते ! देवि ! कुलात्मिके ! आरात्रिर्कामिदं देवि ! गृहाण मम सिद्धये ॥

अब शक्तिपूजा करे। स्वशक्ति या वीरशक्ति या विशेष कर दीक्षिता शक्ति का, जो सुलक्षणा हो, देवता समझकर गन्ध-पुष्पाक्षत से पूजन करे और उसे भोगपात्र दे। फिर कन्याओं और मनोहर स्त्रियों की देवता-बुद्धि से पूजा करे और उनमें से प्रत्येक को अलग अलग पात्र दे। इसके बाद निम्न मन्त्र पढ़कर समर्पण करे—ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धी देहधर्माधिकारजाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना च यत्कृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं गुरुदेव मत्समर्पितमस्तु स्वाहा।

फिर यह प्रार्थना करे—

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यन्मया क्रियते सदा।
तव कृत्यमिदं सर्वमिति मातः ! क्षमस्व मे॥

इस प्रकार प्रार्थना कर प्रधान देवता-स्वरूप में परिवारों को समर्पित करे। इस प्रकार सावरणा देवी का ध्यान हृदय-कमल में करे।

इसके बाद कौलिकमोहिनी देवी उच्छिष्टमातङ्गी का ध्यान करे। यथा—

वीणावाद्यविनोदवाद्यनिरतां नीलांशुकोल्लासिनीं।
बिम्बोष्ठीं नवयावकार्द्रचरणामाकीर्णकेशाननाम्॥

मृदङ्गीं सितशङ्खकुण्डलधरां माणिक्यपुष्पोज्ज्वलां।
मातङ्गीं प्रणमामि सस्मितमुखीं देवीं शुकश्यामलां॥

तदनन्तर दोनों हाथों से पात्र उठाकर द्वितीय तत्व के साथ साक्षात् पर शिव श्री गुरुदेव को प्रदान करे।

तदनन्तर सत्सम्प्रदाय वाले वीरों के साथ पूजन कर परस्पर वन्दनपूर्वक गुरुदेव की अनुमति से पान करे। दाहने हाथ से पात्र ले बाएँ से मुद्रा कर द्वितीय तत्व के साथ यथाविधि मन्त्रोच्चारण करते हुए उसे ग्रहण करे।

हे देवेशि! निम्न मन्त्र और मूलमन्त्र का उच्चारण कर स्थिर मन से धीरे-धीरे साधक अलि-पान करे—

इदं पवित्रममृतं जगतां परभेषजम्।
पशुपाशभवोच्छेदकारणं भैरवोदितम्॥
चित्तेः स्वातन्त्र्यरूपत्वात्तदानन्दमयः स्वतः।
तन्मयत्वाच्च भावानां भावाच्चान्तरितासवे॥
स्व-स्वातन्त्र्यविकाशाय स्वरसस्तेन पीयते।
तस्मादिमां सुरां देवीं पूर्णोहं त्वां पिबाम्यतः॥

मूलाधार के त्रिकोण में स्थित कोटि सूर्यों के समान प्रभावती कुण्डलाकृतिवाली चिद्रूपा में द्रव्य का निम्न मन्त्र से हवन करे—

अहन्तापात्रभरितमिदन्ता परमामृतम्।
पराहन्तामये वह्नौ होमे स्वीकारलक्षणम्॥

गुरु, दैवत और मन्त्र में ऐक्य भाव का चिन्तन करते हुए, जब तक उल्लास उत्पन्न न हो, तब तक मधु-पान करे। भोजन के बाद मद्य विष है और मद्य के बाद भोजन विष है। जो अन्न मधु के साथ ग्रहण किया जाता है, वह अमृत के

समान है। चर्वण-युक्त पान को ही अमृत कहा गया है। पान तीन प्रकार का होता है—१ दिव्य, २ वीर और ३ पशु। देवी के सामने किया जानेवाला दिव्य, मुद्रासन पर ग्रहण किया जानेवाला वीर और स्वेच्छा से पशुवत् किया जानेवाला पशु-पान कहलाता है। दिव्य पान भुक्ति और मुक्ति का देनेवाला है, वीरपान मुक्तिदायक है और पशुपान नरक को पहुँचाता है। दृष्टि, मन, वाणी और शरीर में जब तक भ्रम नहीं होता, तभी तक पान करे। इससे अधिक होने पर पशुपान में गणना होती है। आनन्द के उद्रेक से देवी तृप्त होती है, मूर्छा होने से स्वयं भैरव और वमन से सभी देवता तृप्त होते हैं। कुल-द्रव्य के सेवन से कुलपरायण लोगों को जो सुख मिलता है, वह मोक्ष-स्वरूप ही है, यह हे देवि ! सर्वथा सत्य है।

इस प्रकार वटु, शक्ति आदि का पूजन संक्षेप में कहा गया है। अब हे कुलेशानि ! तुम क्या सुनना चाहती हो ?



आठवाँ उल्लास

उल्लास एवं पान-भेद

देवी ने कहा—हे कुलेश ! द्रव्य के उल्लास, द्रव्यपात्रादि की संगति, रत्युल्लास, श्री चक्र की स्थिति और कौलिक-शक्तियों की चेष्टा के विषय में बताइए।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो, उल्लास सात प्रकार के हैं—१ आरम्भ, २ तरुण, ३ यौवन, ४ प्रौढ़, ५ प्रौढ़ान्त, ६ उन्मना और ७ मनोल्लास। तीन तत्वों के होने से 'आरम्भ' कहा जाता है, तरुण सुख के होने पर तरुणोल्लास माना जाता है, मन के सम्यक् उल्लास की स्थिति को यौवन कहा जाता और दृष्टि, मन, वचन का स्खलन होने पर प्रौढ़ उल्लास स्थ होता है। चक्र में समुल्लास की स्थिति होने पर यदि पात्र-मेलन की इच्छा हो, तो इस बात का ध्यान रखे कि अदीक्षित अनाचारी, प्रपञ्ची, स्त्री-द्वेषी, गुरुओं से अभिशप्त, कुलाचार से अनभिज्ञ व्यक्ति से द्रव्यपात्र की संगति न हो। सङ्केतयोग के बिना द्रव्य-सङ्गति न करे। एकपात्र न करे और अपने पात्र के कारण को भैरव को न प्रदान करे। आसन, भोजन पात्र, उपानत्, शयन—इन सबकी संगति अनभिज्ञ और अयोग्य व्यक्ति के साथ नहीं करनी चाहिए। स्त्रियों का उच्छिष्ट तो ग्रहण करे, किन्तु उन्हें अपना उच्छिष्ट न दे। कनिष्ठ शिष्यों को ही उच्छिष्ट दे। जो स्नेह, लोभ या भयवश अन्य किसी को उच्छिष्ट देता-लेता है, वह आपत्ति को प्राप्त होता है। प्रौढोल्लास होने पर हे देवि ! 'अलि' का त्याग करे।

पूजागृह से बाहर या भीतर एक त्रिकोण बनाकर गन्ध-पुष्पाक्षतों से शिष्य उच्छिष्टभैरव का ध्यान करे—

गदात्रिशूलडमरुपात्रहस्तं त्रिलोचनम्।
कृष्णाभं भैरवं ध्यायेत् सर्वविघ्ननिवारणम्॥

इसके बाद 'ॐ ॐ ॐ उच्छिष्टभैरव एहि एहि बलिं गृह्ण गृह्ण फट् स्वाहा' से बलि प्रदान करे। फिर शान्तिस्तव का पाठ कर अक्षतबिन्दुओं से तर्पण करे। यथा—

यजन्ति देव्यो हरपादपङ्कजं प्रसन्नवामस्थितमोक्षदायकम्।
अनन्तसिद्धान्तमतिप्रबोधकं नमामि चक्राष्टकयोगिनीशम्॥

योगिनीचक्रमध्यस्थं मातृमण्डलवेष्टितम्।
नमामि शिरसा नाथं भैरवं भैरवीप्रियम्॥
अनादिघोरसंसारपरिध्वंसैकहेतवे।
नमः श्रीनाथवेद्याय कुलौषधिविधायिने॥
आपदो दुरितं रोगाः समयाचारलङ्घनात्।
तत्सर्वाणि व्यपोहन्तु दिव्यचक्रस्य मेलनात्॥
नन्दन्तु साधककुलान्यलिमात्मनिष्ठाम्
पापा जहन्तु समयाद्विशि योगिनीनाम्।
सा शाम्भवी स्फुरतु कापि ममाप्यवस्था
यस्यां गुरोश्चरणपङ्कजमेव सेव्यम्।
नन्दन्तु सिद्धगुरवस्तदनुक्रमौघाः
ज्येष्ठानुगाः समयिनो बटुकाः कुमार्य्यः।
यद्धयोगिनीप्रवरवीरकुलप्रसूता
आचार्य्य भूमिपतयो द्विजसाधुलोकाः॥
नन्दन्तु साधुकुलधर्मरताः परे ये
चान्ये विशेषपदभेदकशाम्भवाय॥

नन्दन्तु साधकाः सर्वे नश्यन्तु कुलदूषकाः ।
अवस्था शाम्भवीयास्तु प्रसन्नोऽस्तु गुरुः सदा ॥

यद्येषा भैरवी देवी यदि भैरवशासनम् ।
यद्येष कुलधर्मः स्यात्तदा नश्यन्तु दूषकाः ॥
यासामाज्ञाप्रभावेण स्वास्थितं भुवनत्रयम् ।
नमस्ताभ्यः समस्ताभ्यो योगिनीभ्यो निरन्तरम् ॥
याश्चक्रक्रमभूमिकावसतयो नाड़ीषु याः संस्थिताः
याः कायोद्गतरोमकूपनिलया याः संस्थिता धातुषु ।
उच्छ्वासोर्मिमहातरङ्गनिलया निःश्वासवासाश्च या-
स्ता देव्यो रिपुपक्षभक्षणपरास्तृप्यन्तु मन्त्रार्चिताः ॥
या देव्यः कुलसम्भवाः क्षितिगता या देवतास्तोयगा
या नित्या मुदितप्रभा निधिगता या या भुवि प्रस्थिताः ।
या व्योमाहितमण्डलामृतमया याः सर्वगाः सर्वदाः
ता देव्यः कुलमार्गपालनपराः शान्तिं प्रयच्छन्तु मे ॥
ब्रह्मा श्रीः शेषदुर्गागुहवटुकगणा भैरवाः क्षेत्रपाद्या
रुद्रादित्या ग्रहास्ते वसुपितृमुनयः सिद्धयो गुह्यकाद्याः ।
भूता गन्धर्वविद्याधरऋषिपितरः किन्नरा यक्षनागा
योगीशाश्चारणाद्याः सुरकरनिकराः पूजने सन्तु तुष्टाः ॥
देहस्थाखिलदेवता गजमुखाः क्षेत्राधिपा भैरवा
योगिन्यो वटुकाश्च यक्षपितरो भूताः पिशाचा ग्रहाः ।
अन्ये भूचरखेचरा दिशिचरा वेतालकाश्चेटका-
स्तृप्यन्तां कुलपुत्रकस्य पितरः पीत्वा समीपे चरुम् ।
ऊर्ध्वे ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निष्कले वा
पाताले वा तले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थितो वा ।
तीर्थे पीठोपपीठादिषु च कृतपदास्ते सुराः सर्वपूज्या—
स्तृप्यन्तु ज्ञानदेव्यस्त्वलिबलिपिशितैर्धूपदीपादिकेन ॥

सत्यं चेद्गुरुवाक्यमेव चतुरो वेदागमा योगिनी
मन्त्राश्चेत् परदेवता यदि भवेद्ब्रह्मप्रमाणं हि चेत्।
शाक्तीयं यदि दर्शनं भवति चेदाज्ञाप्यमायान्ति चेत्
सत्यञ्चापि च कौलधर्मपरमं स्यान्मे जयः सर्वदा॥

पिबन्तु मातरः सर्वाः पिबन्तु कुलसत्तमाः।
पिबन्तु भैरवाः सर्वे मम देहे व्यवस्थिताः॥
पिबन्तु मातरः सर्वाः समुद्राः स गणाधिपाः।
योगिन्यः क्षेत्रपालाश्च मम देहे व्यवस्थिताः॥
शिवाद्यवनिपर्यन्तं ब्रह्मादिस्तम्बसंयुतम्।
कालाग्न्यादिशिवान्तञ्च जगद् यज्ञेन तृप्यतु॥

अब पूजापात्र को उठाकर गुरुदेव शिष्य को प्रसाद दे।

अपनी अभीष्ट चेष्टा का करना 'प्रौढान्त' उल्लास है। इस उल्लास के होने पर वीरों में कार्याकार्य का विचार नहीं रहता। इच्छा ही शास्त्र-सम्पत्ति है अतः उक्त अवस्था में जो भी शुभ या अशुभ कर्म होते हैं, वे सब देवता-प्रीति के लिए होते हैं। उस समय का वार्तालाप (जल्पं) जप होता है, विक्रियायें पूजा होती हैं, शक्ति-संयोग मोक्ष और भाषण स्तोत्र होता है। अंगों का स्पर्श न्यास, भोजन हवन की क्रिया, वीक्षण ध्यान और शयन वन्दना के समान होता है। इस प्रकार उक्त उल्लास से युक्त साधक की सभी चेष्टायें सत्क्रियायें ही होती हैं। उनमें कार्याकार्य का विचार जो करता है, वह पापभागी होता है। इस सम्बन्ध की वार्ता का चक्र के बाहर वर्णन करने से भी पाप लगता है। चक्र में सदाकुल साधकों को देखकर देवता-बुद्धि से ध्यान करे और प्रसन्न होकर भक्ति-पूर्वक वन्दना करे। इस प्रकार जो चक्र का दर्शन करता है, वह करोड़ों व्रत-तीर्थ-तपदान-यज्ञादि का फल प्राप्त करता है।

छठवें 'उन्मना' उल्लास से युक्त होने पर बारम्बार मूर्छा, गिर-गिर कर उठना आदि क्रियायें होती हैं। बाह्य दृष्टि निमेष और उन्मेष से रहित होकर लक्ष्य अन्तर्मुख हो जाता है। यही शिव की कामदायिनी शाम्भवी मुद्रा है।

लोभ-रहित होकर उल्लास-युक्त होनेवाले वीर साक्षात् शिव ही हैं, इसमें संदेह नहीं। अपने अनुष्ठान में तल्लीन होकर वे और सब कुछ भूल जाते हैं। इस अवस्था में वे मन-वचन से परे परम सुख को प्राप्त करते हैं। यह सुख शर्करा और दुग्ध के स्वाद के समान स्वयं ही अनुभव द्वारा ज्ञेय है। वह सुख किस प्रकार का होता है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पुलक आदि के द्वारा जो सुखपूर्ण अवस्था दिखाई देती है, वह 'ब्रह्मध्यान' कहलाती है। यह सुखपूर्ण अवस्था सातवें 'मनोल्लास' से युक्त महात्माओं की होती है।

भैरवी चक्र में सभी वर्ण द्विजातिवत् माननीय होते हैं। जाति-भेद नहीं रहता। चक्र के समाप्त होने पर सामाजिक अनुशासन पुनः लागू हो जाता है। चक्र में चाहे स्त्रियों को अलग बैठावे या पुरुषों के साथ दम्पति के रूप में पंक्ति अथवा चक्राकार स्थान दे। शिव-शक्ति के रूप में उन सबकी चक्र में पूजा करे। जिस समय शिव-शक्ति का समायोग होता है, वही-कुल साधकों की समाधिस्था सन्ध्या है।

इस प्रकार मैंने तत्त्वत्रयोल्लास और पान-भेदादि का वर्णन संक्षेप में किया। अब हे कुलेशानि! तुम क्या सुनना चाहती हो?



नवाँ उल्लास

योग-योगीश-लक्षण और कौलपूजा

देवीबोली —हे कुलेश ! योग-योगीश का लक्षण और कुल-भक्त की पूजा का फल बताइए।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! ध्यान दो प्रकार का है—१ स्थूल, २ सूक्ष्म। साकार ध्यान स्थूल और निराकार ध्यान सूक्ष्म कहा जाता है। स्थूल से बुद्धि निश्चित होती है और सूक्ष्म से सुस्थिति। हाथ-पैर, पेटादि अंग और अस्थि से रहित, सर्वतेजोमय, सच्चिदानन्द परमेश्वर का ध्यान करे। न उसका उदय होता है, न अस्त। न बढ़ता है, न घटता। वह अवस्था-रहित और स्वयं-प्रकाश है। सत्तामात्र उस अदृश्य तत्त्व का वाणी द्वारा आत्मा में जो सायुज्य प्राप्त होता है, उस ज्ञान को 'ब्रह्मज्ञान' कहा जाता है। वायु-संचार को रोककर पत्थर के समान स्थिर हो परजीव के एक धाम को जाननेवाला 'योगी' कहलाता है। जिस ध्यानावस्था में पदार्थ मात्र भासित हो और रूप का अभाव हो जाय, वह 'समाधि' कही जाती है। हे देवि ! किसी भी चिन्तन से स्वयं तत्त्व का प्रकाश नहीं होता और स्वयं तत्त्व का प्रकाश होने पर साधक तत्क्षण तन्मय हो जाता है। स्वप्न-जाग्रदवस्था में जो स्वप्नवत् निश्वास-श्वासहीन रहता है वह निश्चय ही 'मुक्त' है। इन्द्रिय-समूह को निष्क्रिय रखकर आत्मा से निश्चय हो जो मृतवत् रहता है, वह साक्षात् 'जीवन्मुक्त' कहा जाता है। न सुनता है, न देखता है, न बैठता है, न जाता है, न सुख-दुःख को जानता है, न मन उनमें लिप्त होता है—इस प्रकार संसार से विरक्त हो जो

'शिव' में अपनी आत्मा को लय रखता है, उसे 'समाधिस्थ' कहते हैं। जिस प्रकार जल में जल, दूध में दूध और घी में घी डालने से कोई अन्तर नहीं पड़ता, उसी प्रकार जीव-आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध में समझे। जिस प्रकार ध्यानशक्ति से कीड़ा भौंरे का रूप ले लेता है, उसी प्रकार ध्यान के द्वारा मनुष्य ब्रह्मभूत हो जाता है। दूध से निकाला हुआ घी जैसे पुनः उसमें फेंकने से पहले जैसा मिश्रित नहीं होता, वैसे ही गुणों के द्वारा पृथक् किया हुआ आत्मा यहाँ कहा जाता है। जिस प्रकार अंधेरे कारागार में बन्दी व्यक्ति कुछ नहीं देख पाता, उसी प्रकार अलक्ष्य योगी प्रपंच को नहीं देखता। जैसे आँख बन्द रहने पर प्रपंच नहीं दिखाई देता, उसी प्रकार आँख खुली होने पर भी वह दृष्टिगत न हो—यही 'ध्यान' का लक्षण है। जीव और आत्मा के ऐक्य को 'योग' कहते हैं। जो एक क्षण के लिए 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार आत्म-चिन्तन करता है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। सहजावस्था उत्तम है, ध्यान-धारणा मध्यम है, जप-स्तुति अधम है और होम-पूजा अधमाधम है; तत्त्वचिंता उत्तम, जपचिन्ता मध्यम, शास्त्रचिन्ता अधम और लोकचिन्ता अधमाधम है। कोटिपूजा के समान स्तोत्र, कोटिस्तोत्र के समान जप, कोटि-जप के समान ध्यान और कोटिध्यान के समान लय है। नाद से परे मन्त्र नहीं, आत्मा से परे देवता नहीं, अनुसन्धि से परे पूजा नहीं और तृप्ति से परे फल नहीं है। हे देवि! देह देवालय है और जीव सदाशिव है। अज्ञानरूपी निर्माल्य को छोड़कर 'सोहं'-भाव से पूजन करे। जीव शिव है, शिव जीव है—वह जीव केवल शिव है। पाशों से बँधा हुआ 'जीव' है और पाशों से मुक्त 'सदाशिव' कहलाता है। जिस प्रकार भूसी से युक्त धान होता है और भूसी के दूर हो जाने पर चावल कहलाता

है, उसी प्रकार कर्मों से बँधा हुआ 'जीव' और कर्मों से छूटा हुआ जीव 'सदाशिव' माना जाता है।

विप्रों का वेद (ज्ञान) अग्नि में, मनीषियों का हृदय में, अल्पबुद्धि लोगों का मूर्ति में और आत्मज्ञानी का सर्वत्र रहता है। जो निन्दा-स्तुति, सुख-दुःख, शत्रु-मित्र में समान भाव रखता है, वही 'योगीन्द्र' है। निःस्पृह, नित्य सन्तुष्ट, समदर्शी, जितेन्द्रिय, स्वर्गहीन और उसके लिए प्रयत्न न करनेवाला परम तत्त्व का ज्ञाता योगी है। पञ्च मुद्राओं से उत्पन्न परमानन्द में मग्न रहनेवाला योगीन्द्र सर्वत्र आत्मा में अपने को देखता रहता है। अलि, मांस और अंगना-सङ्ग में जो सुख मिलता है, वह विद्वानों के लिए तो पुण्य है किन्तु अधमों के लिए पाप है। हे देवि! 'मैं', 'तुम' और 'वह' में ऐक्य भाव का चिन्तन करता हुआ संशयरहित हो वह मद्यपायी मांसाहारी हो स्वेच्छाचार-परायण रहता है। मांसाहार की सुरभि से हीन को सुख नहीं है, उसे प्रायश्चित्ती जानना चाहिए। वह पशु ही है, इसमें संदेह नहीं। जब तक आसव-गन्ध है, तब तक पशु भी साक्षात् पशुपति है और अलि-मांस की गन्ध के बिना साक्षात् पशुपति भी पशु के समान हैं। संसार में निकृष्ट को उत्कृष्ट और उत्कृष्ट को निकृष्ट मानना—महात्मा भैरव ने इसी को 'कुलमार्ग' निर्दिष्ट किया है। हे कुलेश्वरि! कुलयोगीश्वर कौलिकों के लिए न विधि है, न निषेध। न पुण्य है, न पातक। न स्वर्ग है, न नरक।

योगी लोकहित के लिए भोगों का भोग करता है, आकांक्षा से नहीं। सभी कुलों से भोजन ग्रहण करता हुआ वह पृथिवी पर क्रीड़ा करता है। सूर्यवत् वह सब कुछ पीता है, अग्निवत् सब कुछ खाता है। सभी भोगों का भोग करके भी योगी पापों से लिप्त नहीं होता।

दुःखों से निवृत्त, सन्तुष्ट, निर्द्वन्द्व और मत्सरहीन होकर जो कलज्ञान में तन्मय, शान्त और सद्भक्त होते हैं, वे कौलिक हैं। मद, क्रोध, दम्भ, आशा, अहङ्कार से हीन सत्यवादी कौलिकेन्द्र जितेन्द्रिय होते हैं। कुल की प्रशंसा होने पर वे रोमांचित हो उठते हैं, उनका स्वर गद्गद् हो जाता है। संसार में शिवोक्त कुलधर्म सब धर्मों से श्रेष्ठ है, ऐसे निश्चय से युक्त बुद्धिवाले उत्तम कौलिक कहे जाते हैं।

हे देवि ! शुभ दिन पर कौलिकों को देवता समझ कर सहर्ष उन्हें निमन्त्रण दे और गन्धपुष्पाक्षत आदि से उनकी पूजा कर पञ्चमकार एवं मुद्राओं से सभक्ति उनको सन्तुष्ट करे। उनके सन्तुष्ट होने से मैं प्रसन्न होता हूँ और समस्त देवता प्रसन्न होते हैं।

ज्ञानी हो; चाहे अज्ञानी—यदि किसी भी प्रकार की मुक्ति चाहिए तो जब तक शरीर की स्थिति है, तब तक अपने-अपने वर्ण और आश्रम के आचार का पालन अवश्य करना चाहिए। कर्म के द्वारा अज्ञान का उन्मूलन होने पर ज्ञान के द्वारा 'शिवत्व' की प्राप्ति होती है। शिव से ऐक्य स्थापित करनेवाले की ही मुक्ति होती है। अतः कर्म समाप्त करे। कर्मनिष्ठ ही सुखी होता है। देहधारी सभी कर्मों का त्याग नहीं कर सकता। जो कर्म के फल का त्याग करता है, वही त्यागी कहा जाता है। इन्द्रियादि 'करण' अपने कार्य में तत्पर रहते ही हैं, ऐसा विचार कर जो अहंभाव को छोड़ कर्मनिष्ठ रहता है, वह ज्ञानप्राप्ति के बाद क्रियमाण कर्मों में लिप्त नहीं होता। इस प्रकार योग और योगियों के कुछ लक्षण तुमसे संक्षेप में कहे। अब हे कुलेशानि ! तुम और क्या सुनना चाहती हो ?



दसवां उल्लास

विशेष दिवसों के पूजन

देवी ने कहा—हे कुलेश ! मैं विशेष दिनों की पूजा के विषय में सुनना चाहती हूँ। साथ ही उस पूजा का फल भी मुझे बताइए।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! नित्यपूजा उत्तम है, पर्वपूजा मध्यम है, मासपूजा अधम है और एक मास से अधिक समय हो जाने पर साधक भ्रष्ट हो जाता है।

कृष्णाष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा और संक्रान्ति —ये पाँच पर्व हैं। गुरु, परम गुरु, परापरगुरु के और अपने जन्मदिवस पर आचार्य के द्वारा या स्वयं चक्रपूजा करे। प्रति मास, हर दूसरे मास या छठे मास या वर्ष में श्रीगुरुपूजा भक्तिपूर्वक करे। गुरु के अभाव में किसी कौल या उसके शिष्य का पूजन करे और कुलपूजन-पूर्वक कुलद्रव्यों से उन्हें सन्तुष्ट करे।

नवरात्रों में प्रथमा तिथि में एक वर्ष की सुलक्षणा कन्या को स्नान करा कर पूजास्थान में लाकर देवता के पास बैठावे। फिर गन्धपुष्पधूपदीप और कुलदीपकों से उसका पूजन कर खीर, मधु-मांस, केला, नारियल आदि फलों से उसे सतुष्ट करे। तब इष्टदेवता का ध्यान कर यथाशक्ति जप करे और अन्त में देवता समझकर उस कन्या को नमस्कार कर विदा करे। द्वितीया तिथि में दो वर्ष की और पूर्व तिथि में पूजिता एक वर्ष की सुलक्षणा कन्या का पूजन पूर्ववत् करे। इसी क्रम

से नवमी को एक वर्ष से नौ वर्ष तक की कन्याओं की पूजा करे। ये नौ हैं—१ सरस्वती, २ रमा, ३ गौरी, ४ दुर्गा, ५ चन्द्रमुखी, ६ हरप्रिया, ७ उमा, ८ भीमा और ९ शान्ता। 'ॐ ॐ ॐ सरस्वत्यै देवतायै नमः' आदि क्रम से यथाशक्ति गन्ध, पुष्प, वस्त्रादि से इनकी अलग-अलग पूजा करे। देवता समझते हुए विविध पदार्थों से इन्हें सन्तुष्ट करे। ताम्बूल और दक्षिणा देकर इन्हें विदा करे। ऐसा करनेवाला साधक पुण्यात्मा होकर देवी का प्रीतिभाजन होता है।

हे पार्वति! यदि युवा स्त्रियाँ सुलभ हों तो नवरात्रों में साधक भक्तिपूर्वक उन्हें निमंत्रित कर पूर्ववत् १ हृल्लेखा, २ गगना, ३ रक्ता, ४ महत्तण्डा, ५ करालिका, ६ इच्छा, ७ ज्ञाना, ८ क्रिया और ९ दुर्गा के रूप में उनकी पूजा करे। साथ ही वटुक और गणेश-रूप में बालकों का भी पूजन विधिवत् करे। इस प्रकार हे देवि! जो वर्ष में या छठे मास में या तीसरे मास में या प्रति मास व्रतपूर्वक पूजन करता है, वह सभी ऐश्वर्यों को प्राप्त कर हमारा प्रिय होता है।

भृगुवार को हे कुलेशानि! सर्वलक्षणा, मन्दहासा, पुष्पिणी युवा स्त्री को स्नान कराकर सादर निमन्त्रित कर आसन पर बैठावे। गन्ध, पुष्प, वस्त्रादि से उसे सजावे। अपने को भी हे कुलेश्वरि! गन्धपुष्पादि से अलंकृत करे। फिर देवता का आवाहन कर सविधि पूजन करे। अत्यन्त भक्तिपूर्वक मांसादि पदार्थों से उसे सन्तुष्ट करे। फिर प्रौढान्तोल्लास से युक्त उसका दर्शन करता हुआ मन्त्र का जप करे। स्वयं यौवनोल्लास से युक्त रहे और उसका ध्यान करता रहे। इस प्रकार निर्विकार चित्त से १०८ सहस्र जप कर जपफल समर्पित कर विहार करे। तीन, पाँच, सात, नौ भृगवारा में जो इस विधि से पूजन करता

है, उसे असीम पुण्य मिलता है और जो भी उसकी मनोकामना हो, वह पूर्ण होती है।

सभी संक्रान्ति-पर्वों में १ गौरी-शिव, २ रमा-विष्णु ३ वाणी-ब्रह्मा, ४ शची-इन्द्र, ५ रोहिणी-चन्द्र, ६ स्वाहा-अग्नि, ७ प्रभा-रवि, ८ भद्रकाली-वीरभद्र और ९ भैरवी-भैरव इन नौ युगलों की पूर्वोक्त विधि से पूजा करे। 'ॐ ॐ ॐ गौरीशिवेभ्यः नमः' आदि नाम-मन्त्रों से उक्त मिथुनों का गन्ध-पुष्पादि से पूजन कर उन्हें प्रौढ़ान्तोल्लास से युक्त ध्यान करे। इस प्रकार पूजन करने से ये मिथुनदेवता प्रसन्न होकर साधक के मनोरथ को पूर्ण करते हैं। प्रतिवर्ष जो यह पूजन करता है, वह सभी ऐश्वर्यों से युक्त होकर उक्त मिथुनलोकों में निवास करता है।

वैशाख मास की शुक्ल प्रतिपदा के दिन ब्राह्ममुहूर्त में उठकर स्नान-सन्ध्यादि से निवृत्त हो मनोरम एकान्त स्थान में पूर्व की ओर मुख करके बैठे। फिर विधिपूर्वक अपने आपको गन्ध-पुष्पों से अलंकृत कर पूर्वोक्त न्यास कर देवताभाव को प्राप्त करे। सूर्य-मण्डल के कुछ उदित होने पर इष्टदेवता का आवरणों के सहित ध्यान कर षोडशोपचारों से चक्रपूजा-युक्त पूजन करे। इसके बाद कुलदीपों से नीराजन कर गुरुरूप शिव को भक्ष्य-भोज्यादि-सहित अर्घ्य निवेदित करे और उनके प्रसाद को शक्ति के साथ यौवनोल्लास से युक्त होकर निर्विकार चित्त से पान करे। देवी के उक्त मण्डल का ध्यान करते हुए १०८ बार जप करे। फिर जपफल समर्पित कर पूजा और देवता का विसर्जन करे। इस प्रकार शुक्ल प्रति-पदा के शुभ दिन से प्रारम्भ कर कृष्ण चतुर्दशी के दिन तक जप-पूजा करे और अमावास्या के दिन कृपणता छोड़कर यथाशक्ति तीन, पाँच या सात शक्तियों तथा कौलिकों का पूजन करे। एक मास तक जो यह सूर्योदय का अर्चन करता है, उससे देवता

सन्तुष्ट होता है और उसके अभीष्ट पद को प्रदान करता है। इसी क्रम से मध्याह्न या सायाह्न में भी पूजा की जा सकती है। उसका भी वही माहात्म्य है। जो साधक तीनों सन्ध्याओं में एक मास तक यह पूजा करता है, वह सिद्ध होकर पृथ्वी पर देववत् विहार करता है।

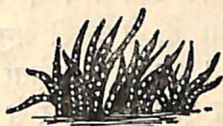
माघ शुक्ल की प्रतिपदा के दिन निराहार रहकर स्नानपूर्वक श्वेत वस्त्र पहन सायं सन्ध्या करे। फिर पूर्वोक्त विधि से सभी द्रव्यों से युक्त होकर चिद्रूपा देवता का ध्यान करते हुए चन्द्रमा के अस्त होने के समय तक एकाग्रचित्त से जप करे। इस प्रकार शुक्ल चतुर्दशी तक प्रतिदिन पूजन करे। पूर्णिमा के दिन यथा-शक्ति शक्तियों और कौलिकों की पूजा करे। भक्तिपूर्वक शुक्लपक्ष का यह पूजन जो साधक करता है, वह सभी ऐश्वर्यों से युक्त होकर सब लोगों से पूजित होता है और शिव-सान्निध्य को प्राप्त करता है। शुक्लपक्ष के ही समान कृष्णपक्ष का पूजन भी वैसा ही फलप्रद है। इस संसार में देववत् सभी सुखों का उपभोग कर वह परमपद को पाता है, इसमें सन्देह नहीं।

कार्तिक मास की शुक्ल प्रतिपदा को स्नान-उपासना के द्वारा विशुद्धात्मा हो पूर्वोक्त न्यासों को करे। फिर जीवलोक के सो जाने पर आनन्दपूर्वक महानिशा में पूर्वोक्त विधि से सभी द्रव्यों से युक्त होकर पाँच रङ्गों के चूर्ण से चित्रित अष्टदलकमल बनावे। उस पर कांसे का सुन्दर कलश मधु से भरकर स्थापित करे। कलश पर घृत का दीपक जलाकर स्थापित करे। दीपक की बत्ती अनामिका के समान मोटी हो। उत्तर की ओर मुखकर साधक कलश के सामने बैठे और उक्त दीपक की ज्योति में आवरण-सहित देवी का ध्यान कर विधिवत् उसकी पूजा करे। फिर यौवनोल्लास से युक्त होकर दीपस्थ देवता का स्मरण करते हुए एकाग्र मन से १०८ बार जप करे। इस प्रकार कृष्ण चतुर्दशी

के दिन तक पूजा करे। अमावास्या के दिन भक्ति-पूर्वक कुलशक्तियों का पूजन करे। ऐसा करने से साधक देवता का प्रीतिपात्र होता है और सब प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त होकर सबसे सम्मानित होता है।

आगमोक्त विधि से विशेष दिवसों में जो पूजन करता है, वह हम दोनों का प्रियपात्र होता है और सद्गति को प्राप्त करता है। अतः प्रयत्नपूर्वक सब दशाओं में कुलपूजा करनी चाहिये क्योंकि कुलपूजा से अभीष्ट फल मिलता है। विशेष दिवसों में साधकों को देखकर सभी लोग हर्षित होते हैं और सोचते हैं कि क्या ही अच्छा होता, यदि वे स्वयं भी पूजा कर सकते। इसलिये चाहे अपने कल्याण के लिये या दूसरे के हित के लिए पवित्र द्रव्यों से युक्त होकर चक्रपूजा-पूर्वक विशेष दिवसों का अर्चन किया करे।

इस प्रकार हे कुलेशानि ! विशेष दिवसों का कुछ अर्चन-विधान मैंने संक्षेप में कहा। अब तुम क्या सुनना चाहती हो ?



ग्यारहवाँ उल्लास

कुलाचार-कथन

देवी ने कहा—हे कुलेश ! मैं कुलाचार-क्रम को सुनना चाहती हूँ। कृपया उसे कहिए।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो। स्नान किये बिना या गन्ध, पुष्प, वस्त्रादि से अलंकृत हुए बिना या शरीर में न्यास किये बिना कुलपूजा नहीं करनी चाहिये। मांस के बिना पूजा, मद्य के बिना तर्पण और शक्ति के बिना जो पान किया जाता है, वह निष्फल होता है। चक्रपूजा अकेले न करे और न एक पात्र में पूजन करे। न एक हाथ से पूजा करे और न एक हाथ से पान करे। पशु के निकट मत्स्य-मांस और आसव के द्वारा पूजन न करे। प्रणाम कर चक्र में प्रवेश करे और प्रणाम करके ही उससे बाहर जाय। हे देवि ! श्रीचक्र का दर्शन करने से नेत्रों के पाप नष्ट होते हैं।

कुलाचारी के गृह में पहुँचने पर माँग कर अमृतान्न ग्रहण करे। उसके अभाव में जल पिये। कुलाचारी के द्वारा दिये हुए पात्र को नमस्कार कर ग्रहण करे। यदि गुरुदेव या उनके पुत्र या अपने से ज्येष्ठ कौलिक उसी ग्राम या नगर में निवास करते हैं, जहाँ कि साधक रहता है, तो उनकी अनुमति से ही कुलद्रव्यों का सेवन करना चाहिये। अन्यथा पाप होता है।

चक्र के मध्य में शुद्ध होने के विचार से जो हाथ आदि धोता है, वह मूर्ख आपत्ति में पड़ता है। जो इस अवसर पर मल-मूत्र-अधोवायु का विसर्जन करता है, उसे पातक लगता है। चक्र के बीच में घट के टूट जाने या पात्र के गिर जाने या दीपक के बुझ जाने से जो दोष होता है, उसकी शान्ति के लिए पुनः श्रीचक्र-

पूजा करनी चाहिये। परिहास, प्रलाप, अति वार्तालाप, उदासीनता, भय, क्रोध आदि से चक्र के समय में बचना चाहिये।

हाथ में पात्र लेकर चक्र में घूमना-फिरना नहीं चाहिये। पूर्णपात्र ग्रहण कर अधिक देर तक न बैठे। हाथ में पात्र हो, तो बातचीत न करे। एक हाथ से बिना मुद्रा के पात्र न दे। न उसे स्थान से हटावे और न अन्य पात्रों में उसे मिलने दे। शब्द करते हुए द्रव्य का पान न करे और न ही पात्र को पूर्ण करते समय शब्द करे। एक दूसरे के पात्रों को टकराना नहीं चाहिये। आधार के सहित पात्र को न उठाये और न आधार से वह गिरने पाये। पात्र को सर्वथा खाली न करे। उसे धोकर छिपाकर रखे।

उल्लास-युक्त होकर कोई कौलिक यदि पशु का साथ करता है या पश्वाचार-परायण होता है, तो उसके धर्म, अर्थ, आयु, यश, पुण्य, ज्ञान, सुख आदि नष्ट हो जाते हैं। श्रीचक्र-स्थित कुलद्रव्य को जो अपनी इच्छा से या लोभ से या भय से पशुओं को देता है, वह योगिनियों के द्वारा मारा जाता है। चक्र के बीच में शत्रु के भी साथ वाद-विवाद न करे। उसके कठोर वचनों को भी सह ले।

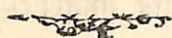
अपने कुटुम्बी या प्यारे मित्र को देखकर जैसी प्रसन्नता होती है, वैसी ही प्रसन्नता कौलिक को देखकर जिसे होती है, वह योगिनी का प्रियपात्र होता है। श्री गुरुदेव, कुलशास्त्र और पूज्य स्थानों को भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उनका माहात्म्य-वर्णन करना चाहिये। जपकाल को छोड़कर गुरुदेव के नाम का उच्चारण न करे। 'श्रीनाथदेव स्वामी' इस नाम से उनका उल्लेख करे। श्रीगुरु-पादुका, मूलमन्त्र और अपनी पादुका शिष्य को छोड़कर अन्य किसी को न बताये। मन्त्रादि गुरुमुख से प्राप्त होने पर ही सफल होते हैं। अपनी पत्नी के समान कुलशास्त्रों का सेवन करे, पशु-शास्त्रों को पराई स्त्री के समान समझे।

कृष्णांशुका, कृष्णवर्णा, मनोहरा, युवती कुमारी की देवता-रूप में पूजा करे। स्त्रियों का समूह, रक्तवस्त्रा नारी, गुरुदेव की शक्ति, गुरुपुत्र, ज्येष्ठ या कनिष्ठ कौल साधक यदि दिखाई पड़ें, तो उन्हें नमस्कार करे। नग्न या पागल स्त्री का कभी उपहास न करे। अप्रिय और असत्य बात न कहे। दिन में स्त्री-सङ्ग कभी न करे। सौ अपराध करने पर भी स्त्री को पुष्प तक से न मारे। स्त्रियों के दोषों का कभी वर्णन न करे, अपितु उनके गुणों के प्रति ही सदा ध्यान दे।

कुलवृक्षों में कुलयोगिनियों का निवास रहता है। अतः उनके पत्तों में विशेषतः अर्कपत्र में भोजन नहीं करना चाहिये। कुलवृक्ष के नीचे न तो सोये और न कोई उपद्रव करे, अपितु उसे देख या सुनकर नमस्कार करे। कभी भी उसे काटे या तोड़े नहीं। श्लेष्मान्तक, करञ्ज, निम्ब, अश्वत्थ, कदम्ब, विल्व, वट, उडुम्बुर–ये कुलवृक्ष माने गये हैं।

एकाक्षर के देनेवाले गुरुदेव की जो अवमानना करता है, वह सौ योनियों में घूमता-फिरता हुआ चाण्डाल होता है। श्रीचक्र के वृत्तान्त को, चाहे वह शुभ हो या अशुभ, कभी प्रकट नहीं करना चाहिए। गुरुदेव का नाम तो प्रकट करे किन्तु अपना मन्त्र कभी किसी को न बताना चाहिये। सभी पापों का प्रायश्चित्त श्री गुरुदेव के नाम का जप करने से हो जाता है।

हे कुलेश्वरि! गुरु को तीन बार आचार का वर्णन करना चाहिये। उस पर भी यदि शिष्य उसका पालन नहीं करता, तो गुरु को पाप नहीं होता। इस प्रकार संक्षेप में मैंने कुलाचार की विधि कही। अब तुम क्या सुनना चाहती हो?



बारहवाँ उल्लास

पादुका-कथन

देवी ने कहा—हे कुलेश ! मैं पादुका की भक्ति के लक्षण और उससे सम्बन्धित आचार के विषय में सुनना चाहती हूँ।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो। असंख्य महादानों, महाव्रतों और महाज्ञानों से अधिक फलदायिका श्रीपादुका है। कोटि मन्त्रजप से, पुण्यतीर्थों के स्नान से और कोटि देवपूजन से बढ़कर पुण्यदा श्रीपादुका है। विषम रोग, विकट उपद्रव, महान् भय और बड़ी से बड़ी आपत्ति में स्मरण करने से श्रीपादुका रक्षा करती है।

श्रीनाथ के चरणकमल जिस दिशा में विराजते हों, उस दिशा को प्रतिदिन नमस्कार करे। ध्यान का मूल श्री गुरुदेव का स्वरूप है, पूजा का मूल श्रीगुरुदेव के चरण हैं, मन्त्र का मूल श्रीगुरुदेव के वचन हैं और मोक्ष का मूल श्रीगुरुदेव की कृपा है। हे कुलनायिके ! इस संसार में सभी क्रियाओं के मूलाधार श्रीगुरुदेव ही हैं। अतः उनकी नित्य भक्तिपूर्वक सेवा करे।

गुरु को मनुष्य, मन्त्र को अक्षर और प्रतिमा को पत्थर जो समझता है, वह नरक को प्राप्त करता है। गुरु को मरणशील समझनेवाला कभी मन्त्रसाधना या देवार्चन में सफल मनोरथ नहीं हो सकता। जन्म देने के कारण माता-पिता पूज्य होते हैं और श्रीगुरुदेव धर्माधर्म के प्रदर्शक होने से और भी अधिक पूज्य हैं। शिव के रुष्ट होने पर गुरु रक्षा कर सकते हैं किन्तु गुरु

के रुष्ट होने पर कोई भी नहीं बचा सकता। अतः मनसा, वाचा, कर्मणा गुरु को जो प्रिय हो, वैसा ही आचरण करना चाहिये।

गुरु यदि निकट हों, तो उन्हें मन ही में नमस्कार न करे, अपितु यदि गुरु-शिष्य एक ही स्थान में निवास करते हों, तो शिष्य को तीनों सन्ध्याओं में प्रतिदिन गुरु को प्रणाम करना चाहिये। आधे योजन की दूरी पर रहनेवाला शिष्य पाँचों पर्वों में आकर गुरु को प्रणाम करे। एक योजन से बारह योजन तक की दूरी पर रहनेवाला शिष्य अपनी इच्छानुसार आकर उन्हें प्रणाम करे।

खाली हाथ राजा, देवता और गुरु के पास न जाये। यथाशक्ति फल, फूल, वस्त्रादि से उनका अभिनन्दन करे। गुरुशक्ति, गुरुपुत्र और गुरु के ज्येष्ठभ्राता का गुरुवत् आदर करे। छोटों को अपने पुत्रवत् समझे।

इस प्रकार संक्षेप में मैंने तुमसे पादुका-भक्ति के लक्षण और आचार बताये। अब क्या सुनना चाहती हो?



तेरहवां उल्लास

गुरु-शिष्य-लक्षण

देवी ने कहा—हे कुलेश ! मैं गुरु-शिष्य दोनों के लक्षण सुनना चाहती हूँ।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो । परशिष्य, पाखण्डी, घमण्डी, विकृताङ्ग, मलिन, रोगी, आलसी, द्यूतादिव्यसनी, देश-द्रोही, नीरस, धूर्त, छिद्रान्वेषी, कृतघ्न, विश्वासघाती, आततायी, मिथ्यावादी, गँवार, बहुभाषी, कुतर्की, झगड़ालू, मूर्ख, आत्म-प्रशंसक आदि दोषयुक्त व्यक्ति को 'शिष्य' न बनाये।

कुलधर्मप्रेमी, कुलार्चनकारी, जपध्यानादिकर्ता और कुलशास्त्र के जिज्ञासु आदि गुणयुक्त व्यक्ति को 'शिष्य' बनाये।

शुद्धवेशधारी, मनोहर, आगमज्ञाता, तन्त्रशास्त्रज्ञ, भ्रम-संशयनाशक, अन्तर्मुखी होते हुए भी बहिर्दृष्टि रखनेवाले, सर्वज्ञ, निग्रह-अनुग्रह में समर्थ, शान्तस्वभाववाले, दयालु, जितेन्द्रिय, अग्रगण्य, गम्भीर, सन्तुष्ट, धैर्यवान, प्रसन्नमुख, नित्य-नैमित्तिक-काम्य कर्मों में तत्पर रहनेवाले, स्त्रीधनादि में अनासक्त आदि गुणयुक्त महानुभाव को 'गुरु' बनाये।

घृणा, लज्जा, भय, शोक, जुगुप्सा, कुलशील और जाति—ये आठ पाश कहे गये हैं। इनसे बँधा हुआ व्यक्ति 'पशु' माना जाता है। इन पाशों से छूटकर वह महेश्वरवत् हो जाता है। अतः उक्त पाशों को जो दूर करता है, वही गुरु है। जो सच्चिदानन्द को जानता है और इन्द्रियजन्य सुख से जो छुटकारा दिलाता है, वह गुरु है। ऐसे ही गुरु की शिष्यों को सेवा करनी चाहिये।

वेद और शास्त्रादि के जाननेवाले गुरु तो बहुत हैं किन्तु परमतत्त्व के ज्ञाता गुरु कठिनाई से मिलते हैं। निगम और आगम शास्त्रों में कथित मन्त्रों को जो जानते हैं, ऐसे गुरु दुर्लभ हैं। शिष्य से धन लेनेवाले गुरु बहुत मिलते हैं, किन्तु शिष्य के दुःख को दूर करनेवाले गुरु कम मिलते हैं। गुरु वही है, जिसके स्पर्शमात्र से परम आनन्द की प्राप्ति होती है। ऐसे ही महापुरुष को गुरु बनाना चाहिए।

प्रेरक, सूचक, वाचक, दर्शक, शिक्षक और बोधक—ये छः प्रकार के गुरु कहे गये हैं। इनमें से पाँच तो कार्यभूत होते हैं, छठा 'बोधक' गुरु कारण होता है। जो गुरु पूर्णाभिषेक करता है, उसी की पादुका हे महेशानि! पूजनीया है। संशय को दूर करनेवाले, ज्ञानदायक सद्गुरु को पाकर दूसरे गुरु का आश्रय नहीं लेना चाहिये। यदि गुरु अनभिज्ञ हो, उसके द्वारा संशय का निराकरण न होता हो, तो दूसरे गुरु के पास जाने में दोष नहीं है। जिस प्रकार शहद का लोभी भौंरा एक फूल से दूसरे फूल को जाता रहता है, उसी प्रकार ज्ञान के लोभी शिष्य को एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाना चाहिये।

इस प्रकार संक्षेप में मैंने तुमसे गुरु-शिष्य के लक्षण कहे। अब हे कुलेशानि! क्या सुनना चाहती हो?



चौदहवां उल्लास

गुरु-शिष्य-परीक्षा

देवी ने कहा—हे कुलेश ! मैं गुरु और शिष्य की परीक्षा के सम्बन्ध में सुनना चाहती हूँ। साथ ही उपदेश का क्रम और दीक्षा के भेद भी बताइये।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! शिष्य की विधिवत परीक्षा लेने के बाद ही गुरु को उसे मन्त्रोपदेश करना चाहिये, अन्यथा वह निष्फल होता है। इसी प्रकार गुरु के सम्बन्ध में समुचित रूप से जानकारी प्राप्त कर जब सन्तुष्ट हो जाय, तभी उनसे शिष्य को मन्त्रोपदेश ग्रहण करना चाहिये। यदि कोई गुरु और शिष्य मोहवश एक दूसरे की परीक्षा किये बिना ही उपदेश देते और लेते हैं, तो वे दोनों ही अनेक वर्षों तक नरक में वास करते हैं।

शिष्य के ज्ञान और क्रिया दोनों की परीक्षा एक वर्ष तक या छः मास तक या तीन मास तक लेनी चाहिये। जो आकृष्ट करने से या प्रताड़ित करने से दुःखी न होकर सदा यही सोचे कि यह गुरु की कृपा ही है और श्रीगुरु का स्मरण, कीर्तन, दर्शन, वन्दन, आज्ञापालनादि करने में जिसे आनन्द अनुभव हो, वह शिष्य बनाये जाने योग्य है।

जिस विज्ञ पुरुष को जप, स्तोत्र, ध्यान, होमार्चनादि के करने में आनन्द मिलता हो; जो ज्ञानोपदेश करने में निपुण हो और जो मन्त्र में सिद्धिप्राप्त हो—ऐसे महापुरुष को 'उद्बोधक' जानकर गुरुरूप में स्वीकार करे।

कर्मकाण्ड से रहित दीक्षा-विधि तीन प्रकार की कही गई है—१ स्पर्शदीक्षा, २ दृग्दीक्षा, ३ वेधदीक्षा। मोक्षदायिनी दीक्षा के सात प्रकार बताए गये हैं—१ समया, २ साधिका, ३ पुत्रिका, ४ वेधिका, ५ पूर्णा, ६ चर्या, ७ निर्वाण। कलश, मण्डपादि से युक्त क्रियादीक्षा गुरुदेव को बाह्य विधानानुसार करनी चाहिए। यह क्रियादीक्षा आठ प्रकार की मानी गई है। पापहरी वर्णदीक्षा बयालीस, पचास या बासठ अक्षरों के न्यास के भेद से तीन प्रकार की है। इसमें शिष्य के शरीर में वर्णों का न्यास कर उसमें देवत्व का भाव जाग्रत् किया जाता है।

कलादीक्षा में पैरों के तलवे से लेकर घुटनों तक निवृत्ति, घुटनों से नाभि तक प्रतिष्ठा, नाभि से कण्ठ तक विद्या, कण्ठ से ललाट तक शान्ति और ललाट से शिर तक शान्त्यतीता इन पाँच कलाओं का, फिर पुनः संहारक्रम से इन्हीं कलाओं का एक स्थान से दूसरे स्थान तक न्यास किया जाता है, जिससे शिष्य को दिव्यभाव प्राप्त होता है।

श्रीगुरुदेव अपने हाथ में शिव का ध्यान कर मूल अङ्गमालिनी का जप कर अपने शिष्य को छुयें। इस प्रकार 'स्पर्शदीक्षा' होती है। अपने चित्त को तत्त्व में स्थित कर परतत्त्व से उत्प्रेरित होकर मन्त्रज्ञाता गुरु मन्त्रोपदेश करें। इसे 'वाग्दीक्षा' कहते हैं। आँखों को बन्द कर परतत्त्व का ध्यान करते हुए प्रसन्न-बुद्धि से यदि गुरुदेव शिष्य को देखें, तो इससे 'दृग्दीक्षा' होती है। गुरु के दर्शन, भाषण, स्पर्शमात्र से जब तुरन्त ज्ञान होता है, तो वह 'शाम्भवी' दीक्षा कहलाती है।

'मनोदीक्षा' तीव्रा और तीव्रतमा दो प्रकार की है। शिष्य के देह में छः अध्वानों का स्मरण करते हुए गुरुदेव जब वेध करते हैं, तब शिष्य पापों से मुक्त और छिन्नपाश होकर बाह्य क्रिया-व्यापार से शून्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है। दिव्यभाव

को प्राप्त होकर वह सर्वज्ञ हो जाता है। यही भवबन्धमोचिनी और शिवभावप्रदायिनी तीव्रतरा दीक्षा है।

वेध की छः अवस्थायें मानी गई हैं—१ आनन्द, २ कम्प, ३ उद्भव, ४ घूर्णा, ५ निद्रा और ६ मूर्च्छा। वेधदीक्षा होने पर शिष्य में ये छः गुण दिखाई पड़ते हैं।

कुलद्रव्यों से सविधि पूजन कर शिष्य को उनका दर्शन कराये, यह 'कौलिकी दीक्षा' है। मुख में पञ्चगव्यामृत से युक्त शिवद्रव्य को भरकर गुरुदेव शिष्य का गण्डूष के द्वारा अभिषेक करें। तब सजीव मीन से युक्त और सुरा अथवा पञ्चामृत से पूर्ण शंख या कलश के द्वारा बाह्य अभिषेक करें। इस प्रकार 'पूर्णाभिषेक' से जो पवित्र होते हैं, वे शिव के सायुज्य को प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार दीक्षा के दो मुख्य भेद हैं—१ बाह्य और २ आभ्यन्तर। क्रियादीक्षा बाह्य है और वेध आभ्यन्तरी। शरीर का न तो संस्कार होता है, न उसकी कोई जाति है और न कोई कर्म। 'आत्मा' की ही दीक्षा होती है, जो अनादि कुलकुण्डली है।

हे देवि! मन्त्रौषधि के द्वारा जिस प्रकार विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार मन्त्रज्ञ गुरु दीक्षा के द्वारा शिष्य के पशुपाश को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। सविधि दीक्षा के होने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और ज्ञान की प्राप्ति होकर शिष्य शिवरूप हो जाता है।

दीक्षा होने से आत्मा शिवत्व को प्राप्त करती है। शूद्र की शूद्रता चली जाती है और विप्र की विप्रता। दीक्षा संस्कार से युक्त होने पर जाति की भिन्नता नहीं रह जाती।

दीक्षा के बिना जो भी जपपूजादि क्रिया की जाती है, वह निष्फल होती है। अतः प्रयत्न करके गुरु से दीक्षा प्राप्त करे।

—:※:—

पन्द्रहवाँ उल्लास

पुरश्चरण-कथन

देवी ने कहा—हे कुलेश ! मैं पुरश्चरण के लक्षण सुनना चाहती हूँ । स्थान, आहारादि भेद मुझे बताइए ।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो । जपयज्ञ से बड़ा अन्य कोई यज्ञ नहीं है । इसलिये जप के द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करे । सब धर्मों को छोड़कर बिना किसी प्रमाद के मन्त्रराज का अभ्यास करे । प्रमाद अर्थात् विधि की उपेक्षा करने से हानि होती है । संसार तो दुःख का स्थान है । यदि आत्म-सफलता चाहिये, तो पञ्चाङ्ग उपासना करे, जिससे मन्त्रजप करने-वाला सुखी होता है ।

तीनों काल की नित्यपूजा, जप, तर्पण, होम और ब्राह्मण-भोजन यही पुरश्चरण कहा जाता है । जो अङ्ग न हो, उसकी संख्या का दुगना मन्त्र जप करे अन्यथा अङ्गहीनता के दोष से अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती । चतुर्विध अन्न के पदार्थों से, जो छः रसों से युक्त हों, विप्रों को भोजन कराकर सन्तुष्ट करे, तो सभी कर्म सफल होते हैं । इस पञ्चाङ्ग उपासना से जो एक मन्त्र को सिद्ध कर लेता है, उसे सभी मन्त्र हे कुलेश्वरि ! आपकी कृपा से सिद्ध हो जाते हैं । उपदेश के सामर्थ्य, श्रीगुरुदेव की प्रसन्नता और मन्त्र के प्रभाव से मन्त्रसिद्धि होती है ।

तीर्थस्थान, नदीतट, गुफा, पर्वत-शिखर, नदियों का सङ्गम-स्थल, तपोवन, उद्यान, विल्वमूल, पर्वत-तट, देवमन्दिर, समुद्रतट

और अपना घर—मन्त्र-साधक के लिये ये स्थान प्रशस्त हैं। अथवा जहाँ प्रसन्नता अनुभव हो, वहीं बैठे। सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, रथ, गो और कुलवृक्ष के समीप जप करना श्रेयस्कर है। घर में सौ गुना, गोष्ठ में लाख गुना, देवमन्दिर में करोड़ गुना और शिव के निकट जप करने का अनन्त फल होता है।

तूल, कम्बल वस्त्र या सिंह-व्याघ्र-मृगचर्म का आसन बनाये, जो सौभाग्य तथा ज्ञान की वृद्धि कराये। पद्म, स्वस्तिक, वीरादि आसनों से बैठकर जपार्चन आदि करे। अन्यथा फल नहीं मिलता। पूरक, कुम्भक और रेचक-युक्त प्राणायामत्रय से मानस, वाचिक और कायिक सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। आगमोक्त विधि से जो नित्य न्यास करता है, वह देवभाव को पाकर मन्त्रसिद्धि को प्राप्त करता है। न्यास, कवच और छन्द से युक्त मन्त्र का जो जप करता है, उसके सभी विघ्न दूर हो जाते हैं।

अक्षमाला दो प्रकार की होती है—कल्पित और अकल्पित। कल्पित अनेक प्रकार की मालाओं से है और अकल्पित मातृकाओं से है। 'अ' से 'क्ष' तक के अक्षरों से निर्मित होने के कारण इसे 'अक्षमाला' कहते हैं। अनुलोम-विलोम से गणना करे। अंगुष्ठ से मोक्ष, तर्जनी से शत्रुनाश, मध्यमा से धनप्राप्ति, अनामिका से शान्तिकर्म, कनिष्ठा से स्तम्भन और अँगुलियों से आकर्षण होता है।

'इतना जप करूँगा' इस प्रकार पहले सङ्कल्प कर स्थिर आसन से बैठकर जपपूर्वक देवी को जल-सहित समर्पण करे। जप तीन प्रकार का है--उच्च स्वर से अधम, उपांशु मध्यम और मानस उत्तम। बहुत धीमे जप करने से रोग होता है और बहुत तेज जप करने से तप का नाश होता है।

मन में स्तोत्र का स्मरण करना और वाणी से मन्त्र का उच्चारण करना—इन दोनों का कोई फल नहीं होता। जात-सूतक और मृतसूतक—इन दो सूतकों से युक्त मन्त्र से सिद्धि नहीं मिलती। मन्त्रार्थ, मन्त्र चैतन्य और योनिमुद्रा को जो नहीं जानता, वह कितना ही जप क्यों न करे, सफल-मनोरथ नहीं होता।

बहुकूटाक्षर, मुग्ध, बद्ध, क्रुद्ध, स्तम्भित, मूर्छित, खण्डित, पराङ्मुख, बधिर, अन्ध, क्षुधित, स्थानदुष्ट, निर्जीव, शप्त आदि अनेक दोष मन्त्र में होते हैं। इन्हें दूर करने के लिए १ जनन, २ जीवन, ३ ताड़न, ४ बोधन, ५ अभिषेक, ६ विमलीकरण, ७ आप्यायन, ८ तर्पण, ९ दीपन और १० गुप्ति ये दस मन्त्र संस्कार बताये गये हैं। इन संस्कारों के करने से मन्त्र स्फूर्तियुक्त हो उठते हैं।

पुरश्चरण-काल में हविष्य, विहित शाक और विहित फल खाये। जिसका अन्नादि पुरश्चरणकर्ता खाता है, वह आधे फल का अधिकारी होता है। अतः पुरश्चरण-काल में दूसरे के अन्न को न ग्रहण करे। कहा भी है कि 'दूसरे के अन्न से जिसकी जीभ जली हुई है, दान लेने से जिसके दोनों हाथ जले हुये हैं और पराई स्त्री का चिन्तन करने से जिसका मन जला हुआ है, उसे कार्य में कैसे सफलता मिल सकती है!'

मन्त्र के सम्बन्ध में यह विचार पहले कर ले कि वह अरि है या मित्र, ऋणी है या धनी। हाँ, स्त्री के द्वारा प्रदत्त या स्वप्न में प्राप्त मन्त्र के सम्बन्ध में इस विचार के करने की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार सिद्ध पुरुष के द्वारा उपदिष्ट और माला-मन्त्रों के लिये भी विचार नहीं किया जाता।

शान्त, पवित्र, अल्पाहारी, भूमि पर शयन करनेवाला, भक्तिमान्, अनुशासनपूर्ण, स्थिरचित्त और मौनी होकर जप करे। साथ ही विश्वास, आस्तिकता, करुणा, श्रद्धा, सन्तोषादि गुणों से युक्त रहे। सुगन्धि, पुष्प, आभूषण और वस्त्रों से अपने शरीर को अलंकृत किये रहे। जप करते-करते यदि थकावट प्रतीत हो, तो पुनः ध्यान करे। ध्यान करने से थकावट आने पर पुनः जप करे। इस प्रकार पुरश्चरण करने से निश्चय ही सिद्धि मिलती है।

इस प्रकार मैंने पुरश्चरण के कुछ लक्षण संक्षेप में तुमसे कहे। अब हे कुलेशानि! तुम क्या सुनना चाहती हो?



सोलहवाँ उल्लास

काम्यकर्म का विधान

देवी ने कहा—हे दयासागर कुलेश ! मैं काम्य कर्म के विधान को सुनना चाहती हूँ। उसे बताइये।

ईश्वर ने कहा—तुम जो पूछती हो, उसे मैं कहूँगा। विशुद्ध हृदय से मन्त्र-साधक श्रीप्रासाद परामन्त्र का पाँच लाख जप करे। जप की दशांश संख्या का हवन करे, दशांश तर्पण करे और उत्तम भोजन, दक्षिणा आदि से यथाशक्ति योगिनियों को सन्तुष्ट करे। इस प्रकार न्यास, जप, ध्यानपूर्वक होमार्चन और तर्पण से मन्त्र-सिद्ध होकर साधक साक्षात् शिवरूप हो जाता है। तब वह अभीष्ट प्रयोगों का साधन करे। मन्त्रसिद्ध साधक के सभी प्रकार के षट्कर्मादि प्रयोग निश्चय ही सफल होते हैं।

काम्य प्रयोग करनेवालों का मोक्ष नहीं होता। उन्हें अपने प्रयोगों में सिद्धि मिलती है; यही उनकी सफलता है। एक विधान से दो फल कहीं भी नहीं मिलते। हे देवेशि ! इसी से देवता का यजन निष्काम भाव से करना चाहिए।

षट्कर्मों के प्रयोग अपने और दूसरों के लिये किये जाते हैं। प्रयोग के दोषों की शान्ति के लिये और अपनी रक्षा के लिए न्यास-ध्यानपूर्वक एक लाख जप मन्त्र का कर लेना चाहिए। नहीं तो, सफलता के स्थान पर हानि की संभावना रहती है।

ऋषि, छन्द, वीज, शक्ति, कीलक, देवता, अङ्गन्यास, ध्यान और पूजाविधि का ज्ञान प्राप्त कर मन्त्रों की साधना करनी

चाहिए। पञ्चशुद्धि, आसन, प्राणायाम, माला, दोष-संस्कार-शोधनादि का भी ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।

हे देवि! किसी मनोहर स्थान में स्थिर मन होकर साधक सुखासन पर बैठे। फिर गुरु-वन्दनापूर्वक अपने मस्तक में स्थित पूर्णचन्द्र के उज्ज्वल मण्डल का ध्यान करे। उस चन्द्रबिम्ब से निकलती हुई सुधा से अपने शरीर को आप्लावित होता हुआ अनुभव करे। साथ ही षोडशस्वर-युक्त श्रीप्रासाद परावीज का चिन्तन करता रहे। इस प्रकार १०८ बार श्रीप्रासाद परामन्त्र का जप कर तरुणोल्लास के सहित मण्डल-पूजा करे। इस विधान के फलस्वरूप अकाल मृत्यु, महारोग, वृद्धावस्था एवं मृत्यु-जनित भय, ग्रह, अपस्मार, वेताल, भूत, उन्मादादि के संकट दूर होकर आधि-व्याधि से रहित होकर साधक पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न हो सब लोगों से सम्मानित होता हुआ शतंजीवी होता है।

ज्वरोन्मादादि रोगों में शिर में चिन्तन करता हुआ जप करे। शूल, वात, व्रत, ग्रन्थि, मूत्रकृच्छ्रादि के होने पर उन-उन स्थानों का स्पर्श कर पूववत् चिन्तन करता हुआ जप करे। महारोगों के उत्पन्न होने पर सभी अंगों में चिन्तन करे। सिद्धमन्त्री के इस प्रकार ध्यानपूर्वक जप करने पर सभी रोग शान्त हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। शरीर की इन्द्रियों में जो उक्त प्रकार का ध्यान करता है, उसकी इन्द्रियाँ सुगठित और सुपुष्ट होती हैं। सदैव मूर्ध्नि में ध्यान करने से साधक अजर-अमर होता है। यह फल उक्त सात्विक ध्यान करने से साधक को प्राप्त होता है। सभी शान्ति कर्मों को इसी विधि से सम्पन्न करे।

द्वादश आधार पद्मों में द्वादश स्वरों से युक्त वीज का ध्यान करने से साधक अजर-अमर होता है। अथवा षडाधारों में दीर्घस्वरों से युक्त वीज का ध्यान करे। हृदय-कमल की कर्णिका

के मध्य में सूर्य-मण्डल में स्थित परा प्रासाद बीज का ध्यान इस प्रकार करे कि वह तरुण अरुण के समान प्रकाशमान है, जवा-बन्धूक-पद्मराग जैसी उसकी प्रभा है। पचीस स्पर्शाक्षरों से युक्त उसकी प्रभा से तीनों लोक प्रकाशित हैं और अपने को भी उसी से अभिभूत ध्यान करे। तरुणोल्लास के सहित पराप्रासाद वीज का एक सहस्र आठ बार जप करे। इस विधान से देव, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, किन्नर, विद्याधर, मुनि, यक्ष, नाग, अप्सरायें, स्त्रियाँ, सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि सभी साधक के वशीभूत हो जाते हैं। साधारण मनुष्यों की क्या बात है। उक्त राजस ध्यान के फलस्वरूप साधक महान् ऐश्वर्य को प्राप्त कर स्वर्ग के भोगों को पाता है। जिसके मस्तक में स्मरण करते हुए वह जप करता है वह निश्चय ही उसके वश में हो जाता है।

इसी प्रकार पराप्रासाद वीज को कल्पान्त की अग्नि की प्रभा-वाला और अपने को कालानल के समान सर्व प्राणियों के लिए भयङ्कर ध्यान करता हुआ दक्षिण मुख बैठकर यौवनोल्लासपूर्वक १००८ बार जप करने से साधक सभी क्रूर, विघ्नकर्ता, दुष्ट और क्लेशकारी प्राणियों का तत्क्षण नाश करने में समर्थ होता है।

यह काम्य-कर्म के सम्बन्ध में मैंने तुम्हें कुछ अति संक्षेप में बताया है। अब तुम क्या सुनना चाहते हो?



सत्रहवां उल्लास

गुरुनामादि की भावना

देवी ने कहा—हे कुलेश ! मैं गुरुनामादि की भावना को सुनना चाहती हूँ। साथ ही कुल पदार्थों का तत्त्व मुझे बताओ।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो। 'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रु' शब्द का तात्पर्य है उसके दूर करनेवाले से। अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने के कारण 'गुरु' नाम पड़ा।

शिष्य को ही वह आचारवान् नहीं बनाता, अपितु स्वयं भी वैसा आचरण करता है और इस प्रकार संसार में शास्त्रों का भावार्थ स्पष्ट करता है। यम-नियम आदि योग का उसे अभ्यास रहता है। इसी से वह 'आचार्य' कहा जाता है।

ध्यान के द्वारा जिसमें चित्त को एकनिष्ठ किया जाता है, उसे 'आराध्य' कहा जाता है।

देवता का रूप धारण करने और शिष्यों पर कृपा करने तथा दयामय स्वभाव रखने से 'देशिक' नाम पड़ता है।

अपने अन्तःकरण में शान्तिपूर्वक परतत्त्व का चिन्तन करते रहने से और मिथ्या ज्ञान से रहित होने के कारण 'स्वामी' कहा जाता है।

मन के दोषों से परे होने, वाद-विवाद से दूर रहने, समदृष्टि होने और मोक्षज्ञान के देनेवाले होने से 'श्रीनाथ' नाम पड़ता है।

सारे संसार को अपने वशीभूत रखने से 'देव' कहा जाता है।

संसार के बन्धन को काटने और भवबाधा से रक्षा करने के कारण 'भट्टारक' नाम पड़ता है।

भुक्ति-मुक्ति देने से 'प्रभु', देवताओं से भी पूजा प्राप्त करने से 'योगी', सङ्गदुःख को छोड़कर आत्मानुसन्धान में लगे रहने से 'संयमी' और तत्त्व का मनन करने तथा शुभ कार्यों के स्वीकार करने से 'तपस्वी' कहा जाता है।

अक्षर अर्थात् अविनाशी होने से, संस्कार के बन्धनों से मुक्त रहने से और आत्मबोध होने से 'अवधूत' नाम पड़ता है।

राग, मद, क्लेश, कोप, मात्सर्य, मोह से रहित होने से और रज, तमोगुण से परे रहने के कारण 'वीर' कहा जाता है।

शक्ति और शिव से उद्भूत जो कुल और गोत्र प्रसिद्ध हैं, उनसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसका ज्ञान रखनेवाला 'कौलिक' कहलाता है।

सार वस्तु का संग्रह करने और धर्म-कर्म में लगे रहने तथा इन्द्रियों का नियमन करने से 'साधक' कहा जाता है।

मन, वचन और कर्म से परम भक्तिपूर्वक भजन करनेवाला समस्त कठिनाइयों को पार कर जाता है। अतः वह 'भक्त' कहलाता है।

जो अपने शरीर और प्राणों को सद्गुरु को अर्पित कर योग की शिक्षा ग्रहण करता है, वह 'शिष्य' कहा जाता है।

योनिमुद्रा का अनुसन्धान करने से और गिरिजा के चरणों की सेवा करने से 'योगिनी' कहलाती है।

तीव्र स्फूर्ति प्रदान करने से 'शक्ति' कही जाती है।

स्तुति द्वारा मन को प्रसन्न करने से 'स्तोत्र' कहलाता है।

अपने हृदय में अभीष्ट देवता का चिन्तन करना ही 'ध्यान' कहा जाता है।

अखिल धर्मों का निरूपण करने से और सभी दर्शनों का प्रमाण-स्वरूप होने से 'वेद' कहलाता है।

पुण्य-पाप का कथन करने से, राक्षसों का निवारण करने से और नवतत्त्वादि का वर्णन करने से 'पुराण' कहा जाता है।

वर्णाश्रम के नियमों को सदैव सूचित करने से और सब पापों से तारने के कारण 'शास्त्र' कहलाता है।

निमित्तों का स्मरण कराने से और धर्म-अधर्म का निरूपण करने से तथा अज्ञान-तिमिर को दूर करने से 'स्मृति' कही जाती है।

दिव्य गति को प्राप्त करने का विधान बताने से और आचार-वर्णन करने से 'आगम' कहलाता है।

परादिशक्ति का सान्निध्य प्राप्त करने से 'शाक्त' कहा जाता है।

सब मार्गों का आदि होने से और यज्ञादि धर्म का कारण होने से 'आम्नाय' कहलाता है।

दिव्य भाव प्रदान करने से, पाप का क्षय करने से और भव-बन्धन से मुक्ति दिलाने से 'दीक्षा' कही जाती है।

अलङ्कार के समान शोभायमान होने से और कम्प, आनन्दादि की अनुभूति कराने से 'अभिषेक' कहलाता है।

देवता के अमित तेज के तत्त्वरूप का मनन होने से और सभी प्रकार के भयों से रक्षा होने से 'मन्त्र' कहा जाता है।

भक्तों के देह में विराजमान होने से और वरदान से तापत्रयादि का शमन करने से 'देवता' नाम पड़ा।

न्याय से उपार्जित धन का शरीर में उपयोग करने से और सर्वरक्षाकारी होने से 'न्यास' कहा जाता है।

देवताओं को प्रसन्न करता है और मुक्ति दिलाता है। अतः 'तन्त्र' कहलाता है।

अनन्त फल देने से और सभी पापों का क्षय करने से 'अक्ष-माला' कही जाती है।

आत्मसिद्धि देने से, सब रोगों को दूर करने से और नव-सिद्धियाँ प्रदान करने से 'आसन' कहलाता है।

मायाजाल का शमन करने से, मोक्षमार्ग का निरूपण करने से और आठों प्रकार के दुःखों को दूर करने से 'मद्य' कहा जाता है।

मङ्गलकारी होने से, संविदानन्द देने से और सब देवताओं का प्रिय होने से 'मांस' कहलाता है।

पूर्वजन्म के पापों का शमन करने से, अपमृत्यु का निवारण करने से और सभी प्रकार का फल देने से 'पूजा' कही जाती है।

अभीष्ट फल प्रदान करने से, चतुर्वर्ग-फलों का आश्रय होने से और सब देवताओं की वन्दना होने से 'अर्चन' कहलाता है।

तत्वात्मक देवता को उसके परिवार-सहित आनन्द प्रदान करने से 'तर्पण' कहलाता है।

गम्भीर पापों, दुर्भाग्य, क्लेशादि का नाश करने से और धर्म का ज्ञान प्रदान करने से 'गन्ध' कहा जाता है।

आत्मज्ञान देने से, पापों का क्षय करने से और तादात्म्य करने से 'अक्षत' कहलाता है।

पुण्य की वृद्धि करने से और पुष्कल अर्थदान करने से 'पुष्प' कहा जाता है।

बड़े से बड़े दोष को दूर करने से और परमानन्द उत्पन्न करने से 'धूप' कहलाता है।

अज्ञान और अहङ्कार को दूर करने से और परातत्व का प्रकाशन करने से 'दीप' कहा जाता है।

मोह को शान्त करने से और क्षय आदि दुःखों का निवारण करने से तथा दिव्यरूप प्रदान कर परतत्त्व का प्रकाशन करने से 'मोक्षदीप' कहलाता है, जो मोक्षमार्ग का अचूक साधन है।

छः रसों से युक्त चतुर्विध द्रव्यों को निवेदित करने से तृप्ति होती है। अतः 'नैवेद्य' कहलाता है।

तत्त्वों का प्रकाश करने से 'तत्त्वत्रय' कहे जाते हैं।

चतुर्वर्ग का फल देने से और अज्ञानबन्धन से छुटकारा दिलाने से तथा कल्याणकारी धर्म का मूल होने से 'चरुक' कहलाता है।

प्रकाशानन्द को उत्पन्न करने से और सामरस्य प्रदान करने से तथा परतत्त्व का दर्शन होने से 'आनन्द' कहा जाता है।

पाश को काटने से, नव तत्वों को धारण करने से और पवित्र करने के कारण 'स्नान' कहा जाता है।

कर्म, मन और वाणी से सभी अवस्था में सदैव समीप रहकर विधिपूर्वक सेवा करने से 'उपास्ति' कही जाती है।

पञ्चाङ्ग उपासना से इष्टदेवता की प्रसन्नता मिलती है। उसे भक्त पहले करता है। अतः 'पुरश्चरण' कहलाता है।

इस प्रकार 'गुरु' आदि नामों का रहस्य मैंने हे महेशानि ! संक्षेप में कहा। जो यह सब जानता है, वह कौलिक है।

ऊर्ध्वाम्नाय का संक्षेप में वर्णन इस कुलार्णव शास्त्र में हुआ है। इसे गुरुमुख से समझना चाहिये।

आवाहनादि सोलह या बारह कर्मों को विधिपूर्वक सम्पन्न करना 'उपहार' कहलाता हैं।

सोलह उपचारों से देवता का पूजन कर उसे अपने स्थान को प्रेषित करना 'मूद्वासन' कहा जाता है।

आसन पर सन्निवेशन करना ही 'स्थापन' है।

देवता के शरीर में षडङ्गों का न्यास करना 'सकलीकरण' कहलाता है।

देवता को आच्छादित करना (ढँकना) 'अवगुण्ठन' कहा जाता है।

धेनुमुद्रा को दिखाकर 'अमृतीकरण' किया जाता है।

'क्षमस्व' के साथ अंगुलि-प्रदर्शन 'परमीकरण' कहलाता है।

देवता का स्वागत कर उससे कुशल-प्रश्न करना चाहिए। श्यामाक, दूर्वा, कमल-पुष्प और विष्णुक्रान्ता-युक्त 'पाद्य' रुचिकर होता है। 'आचमनीय' में जाती, लवङ्ग और कङ्कोल का मिश्रण निर्दिष्ट किया गया है। 'अर्घ्य' के अष्टाङ्ग ये बताये गये हैं—१ सिद्धार्थ (सरसों), २ अक्षत, ३ कुश का अग्रभाग, ४ तिल, ५ जौ, ६ गन्ध, ७ फल और ८ पुष्प।

मधु, घृत और दधि से 'मधुपर्क' प्रस्तुत होता है। श्वेत चन्दन, कस्तूरी, कालागुरु आदि से सुगन्धित जल से देह को धोना ही 'स्नान' है।

आठों अङ्गों से भूमि को स्पर्श करते हुए प्रणाम करना 'वन्दन' कहलाता है।

यह सारा चराचर जगत् 'क्षेत्र' कहा गया है। इस क्षेत्र का जो पालन करता है, वह 'क्षेत्रपाल' कहलाता है।



हमारे प्रकाशन

वाममार्ग ३), मन्त्रसिद्धि का उपाय २), मातृ उपासना २॥), पञ्चमकार तथा भावत्रय ३), हिन्दी शाक्तानन्द तरङ्गिणी २।।।), हिन्दी तन्त्रसार ६), हिन्दी कौलावली निर्णय ३।) श्रीभगवती गीता ३।), साधक का सम्वाद ३।।।), श्रीगायत्री तत्त्व विमर्श २), धनप्राप्ति के प्रयोग १), श्रीश्यामा सपर्या वासना ३॥), काली स्वरूप तत्त्व ॥=), श्री तारा स्वरूप तत्त्व २), श्री कल्पद्रुम दो भाग ५॥), श्रीत्रिपुरा महोपनिषद् १॥), मुमुक्षु मार्ग ३ भाग ६), सन्तानसुख प्राप्ति के प्रयोग १), भैरवी चक्रपूजन १)।

सप्तशती रहस्य ३॥), सप्तशती मीमांसा १।।।), दुर्गासप्तशती—शब्दशः पद्यानुवाद १।), चण्डी चरितावली ।।।), शतचण्डी विधान २।।।), चण्डिका माहात्म्य १)।

उपदेश मुक्तावली—भजन-संग्रह (दो भाग) ६॥); दोहावली ॥), आरति-माला ।।।), श्री भैरवोपदेश २।।।), विनय सुधा १।) कौल-कीर्तन १), श्री उच्छब गीताञ्जलि २।)।

श्रीकाली नित्यार्चन ३), श्रीश्यामा पूजा-पद्धति ३), श्रीतारा नित्यार्चन २॥), श्री श्रीविद्या नित्यार्चन ३॥), श्रीबाला नित्यार्चन ३), श्रीभुवनेश्वरी नित्यार्चन ३), वैदिक श्रीबगला पूजापद्धति....२), श्रीबगला नित्यार्चन २), श्रीछिन्नमस्ता नित्यार्चन २)।

श्रीबालास्तवमञ्जरी २॥), श्री श्रीविद्या स्तवमञ्जरी ३॥), श्रीकाली स्तवमञ्जरी ३॥), श्रीतारास्तवमञ्जरी २।), श्रीदुर्गास्तवमञ्जरी २॥), दकारादि श्रीदुर्गानामसाहस्रं ॥), सविधि आपदुद्धार बटुकभैरवस्तोत्रं ।।।), चक्रपूजा के स्तोत्र १), आनन्दलहरी २।), सार्थ-सौन्दर्यलहरी ३॥), सविधि काली कर्पूरस्तवः १)।

परातन्त्रम् १॥), मातृकाभेद-तन्त्र २॥), निरुत्तर तन्त्र २॥), ज्ञान-संकलिनी तन्त्र १॥), तोडलतन्त्र १॥), कुलार्णवतन्त्र ३॥), मन्त्रकोष २), काली-तन्त्रम् २), कामधेनु-तन्त्रम् २), श्री भुवनेश्वरी रहस्य ३)।

हिन्दुओं की पोथी ३), अक्षयवट ॥), वन्देमातरम् २)।